गुरुदेव !

गुरु ! आप कोई शक्ति हो, विन शक्ति बन सकती नहीं-
थी 'जैन-जगती' आज मुझसे, जो दया रहती नहीं।
गुरुदेव ! आशीर्वाद इसको अब दया कर दीजिये;
इसके अयन के शूल सब औ कर दया चुन लीजिये ।।

'अरविन्द'

पूजनीया माता
श्रीमती
हगामबाई की
पुण्य-स्मृति में

विषय-सूची

प्राक्कथन ... . पृष्ठ
१—दो शब्द ६
२—जैन-जगती और लेखक ८
३—जैन-जगती १०
४—निवेदन ११

अतीत खण्ड

विषय पृष्ठ

मङ्गलाचरण १
लेखनी .... ,,
उपक्रमणिका .... ,,
आर्य-भूमी ४
आर्यावर्त-महात्म्य ... ५
हमारे पूर्वज ७
आदर्श जैन १०
आदर्श आचार्य १६
आदर्श स्त्रियाँ १८
हमारी सभ्यता ... २२
हमारी प्राचीनता २८
हमारे विद्वान्-कलाविद ३०

विषय पृष्ठ

हमारा साहित्य ३३
कला-कौशल ४१
जैनधर्म का विस्तार ४५
हमारा राजत्व ... ४७
हमारी वीरता ४८
हमारी आध्यात्मिकता ... ५२
श्रीमन्त व व्यापार ५३
व्यापार-कला का प्रभाव ५६
वैश्यकुल की साक्षरता .... ,,
वातावरण .... ,,
चरम तीर्थंकर भ० महावीर ६६
पतन का इतिहास ६६

उपदेशक व नेता ... ,,
आडम्बर ... ... ,,
दंभ पाखंड १४४
आवेदन .... ,,

भविष्यत खण्ड

विपय पृष्ठ
लेखनी १४७
उद्बोधन १४९
आत्म-संवेदन १५१
आचार्य-साधु-मुनि १५३
साध्वियें १५९
नेता ... . ,,
उपदेशक १६१
श्रीमन्त ... . ,,
निर्धन १६५
श्रीपूज्य १६६
यति १६७
युवक ... . ,,
पंचायतन १७०
कवि १७१
लेखक १७२
ग्रंथकर्त्ता १७३
शिक्षक १७३

विषय पृष्ठ
पत्रकार १७४
शिक्षण संस्थाओके संचालक ,,
नारी १७५
सभा १७९
मण्डल .... ,,
तीर्थ १८१
मंदिर .... .. ,,
विद्या-प्रेम .... ,,
स्त्री शिक्षा १८२
साहित्य-सेवा .. १८३
योजना .... ,,
लेखनी १८५
गुरुदेव भारती .... ,,
आशा १८६
शुभ कानना १८७
विनय १९०
परिशिष्ट १९३
शुद्धाशुद्ध पत्र

दो शब्द

कला की ओर से काव्य की परख मुझ में नहीं। फिर भी श्री दौलतसिंहजी 'अरविंद' का आदेश शेष रहा कि मैं उनकी पुस्तक पर 'दो शब्द' दूँ। सुयोग की बात मेरे लिये यह है कि प्रस्तुत काव्य केवल या शुद्ध काव्य नहीं है। वह एक वर्ग विशेष के प्रति सम्बोधन है। जैन परम्परा में से प्राण एवं प्रेरणा पाने वाले समाज के हित के निमित्त वह रचा गया है। इससे उसकी उपयोगिता सीमित होती है। पर तात्कालिक भी हो जाती है। परिणाम की दृष्टि से यह अच्छा ही है।

पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहिले में जैनों के अतीत की महिमामय अवतारणा है। दूसरे में वर्तमान दुर्दशा है। अन्त में भविष्य की ओर से उद्बोधन है। तीनों में चोट है और स्वर उद्यम है।

निस्संदेह वर्तमान के अभाव की क्षति-पूर्ति में लेखक ने अतीत को कुछ अतिरिक्त महिमा से मंडित देखा है। पर कवि सुधारक के लिये यह स्वाभाविक है। ऐतिहासिक यथार्थ पर उसे न जाँचना होगा। उसके अक्षर और विगत पर न अटक कर उसके प्रभाव को ग्रहण करना यथेष्ट है। जैनों में अपनी परम्परा का गौरव तो चाहिये। वह आत्मगौरव वर्तमान के प्रति हमें तत्पर और भविष्य के प्रति प्रबुद्ध बनावे। अन्यथा इतिहास के नाम पर दावा बन कर वह दर्प और ढोंग हो जायगा जो थोथी वस्तु है। वह तो कषाय है, साम्प्रदायिकता है, और मेरा अनुमान है कि लेखक के निकट भी वह इष्ट नहीं है।

जैन-जगती और लेखक

मैं न कवि हूँ, न काव्यकला का पारखी, इसलिये जैन-जगती को कविता की मानी हुई कसौटियों पर कस कर उसका मूल्यांकन करना मेरे अधिकार से बाहर की बात है। पर अगर हृदय की रागात्मक वृत्तियों का कविता के साथ कोई सम्बन्ध है तो मैं कहूँगा कि 'जैन-जगती' में मुझे लेखक की हार्दिकता का काफी परिचय मिला है।

पुस्तक के नाम, शैली, छंद और विषय-प्रतिपादन से यह तो स्पष्ट ही है कि भारत के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की सुन्दर कृति 'भारत-भारती' से लेखक को पर्याप्त प्रेरणा मिली है। लेखक ने जैन-समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्यत का जो चित्र अंकित किया है, उसमें कुछ ही स्थल है, जहाँ मैं लेखक की मनोभावना का समर्थन नहीं कर सकता। पर ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं। लेखक जिसके प्रति और जो कुछ कहना चाहता है, उसमें वह काफी सफल हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। अगाध निद्रा मे सुप्त पड़े हुए जैन-समाज को जागृत करने का, उसको नव चैतन्योदय का नव संदेश देने का, और जीवन के नये आदर्शों की प्रेरणा देने का लेखक का ध्येय उच्च है, इसमें मत-वैभिन्य की जरा भी गुंजाइश नहीं है। जिस तपिश से लेखक का हृदय जल रहा है, उसी को अनुभव करने के लिये 'जैन जगती' में उसने सारे जैन-युवकों को आह्वान दिया है। उसका यह आह्वान सच्चा है, सजीव है और अभिनन्दनीय है। यह आग पूरी तरह सुलगी नहीं है, लेखक का ध्येय उसको प्रज्वलित करने का है जिससे समाज की प्रगति के मार्ग में रोड़े

❀ ॐ अर्हन्नमः ❀

जैन-जगती

अतीत खण्ड

मङ्गलाचरण

हे शारदे ! उर-वीणा पर तू कमल-पाणि पसार दे,
सब हो रहे हैं तार बेस्वर—प्राण इनमें डार दे।
मैं वदन-सरवर-मुख-कमल पर सुमन-आसन डार दूँ;
तू मन-मनोरथ सार दे तन, मन, वचन, उपहार दूँ ॥ १ ॥

लेखनी

पारस-विनिर्मित लेखनी ! मुक्ता-मसी मैं घोल दूँ,
कल हंस मानस चित्र दे—हृद् सार अपना खोल दूँ।
यह यान हो, पिक-तान हो, वीणा मनोरम पाणि हो,
अरविंद-उर तनहार हो, 'अरविंद' पर वर पाणि हो ॥ २ ॥

उपक्रमणिका

किसका रहा वैभव बताओ एकसा सब काल में;
जो था कभी उन्नत वही बिगड़ा-हुआ है हाल में।
इस दुर्दिवस में वह कथा हे लेखनी ! लिखनी तुझे;
पाषाण-उर हम हो गये, उर पद्म करना है तुझे ॥ २ ॥

नभ मे चढ़े का अभिपतन अनिवार्य्य क्या होता नहीं ?
जो ले चुका है जन्म, क्या मरना उसे पड़ता नही ?
यह विश्व वर्तनशील है—हम जानते सिद्धान्त हैं।
बनकर अनेकों भ्रष्ट होते—मिल रहे दृष्टान्त हैं॥ ९ ॥

ससार का जीवन-विधाता सूर्य है—जग जानता,
डूबा हुआ अवलोक रवि को शोक क्या वह मानता ?
डूबा हुआ है आज जो वह कल निकल भी आयगा,
मुर्झे हुए मन-पद्म को फिर से हरा कर जायगा॥ १० ॥

हा ! कौन पुल मे भाग्य-दिनकर अस्त तेरा हो गया !
जो आज तक तेरे गगन में फिर नहीं लेखा गया।
क्यों आर्य ! अब तक सो रहे हो कामिनी-रस-रास में ?
पाश्चात्य जनपद ने हरा वैभव हमारा हाँस में॥ ११ ॥

कहना न होगा की सभी के प्राण-त्राता आर्य है;
विद्या—प्रदाता—ज्ञानदाता—अन्नदाता आर्य हैं।
उन्नत हुए ये देश जितने आज जग में दीखते,
होती न यदि इनकी दया, ये किधर जाते दीखते ?॥ १२ ॥

विज्ञान के वैचित्र्य से जो हो रहा अभितोष है,
यह तो हमारे ज्ञान का बस एक लघुतम कोष है।
नक्षत्र, ग्रह, तारे तथा इस व्योम पर अधिकार था;
अपवर्ग तक भी जब हमारे राज्य का विस्तार था॥ १३ ॥

विद्या-कला-कौशल सभी का यह प्रथम गुरुराज है;
इसके सहारे विश्व के होते रहे जग-काज है।
जो स्वर्ग भी गुण गा रहा हो कौनसा आश्चर्य है?
बस आर्य-भूमी—आर्य-भूमी—आर्य-भूमी आर्य है॥ १९ ॥

आर्यावर्त-माहात्म्य

जब अन्य जनपद के निवासी थे दिगंबर घूमते,
घनघोर जंगल में विचरते, फूल, पल्लव चूमते।
भार्या, सुता में भी न वे जब भेद थे कुछ जानते,
उस काल, दक्षिण* काल में मनु-धर्म हम थे मानते॥ २० ॥
ऋषभादि[२] जिनवर, विमल[३] कुलकर, राम[४] रावण[५] हो चुके;
भूमी-विलोडन[६], लंक-दाहन[७], देव-रण[८] थे हो चुके।
श्रुति-शास्त्र[९]-रचना हो चुकी थी, यम, नियम थे बन चुके;
ये तब जगे जब धर्मके नय[१०]मत हमारे लड़ चुके॥ २१ ॥

उत्कीर्ण होकर मत-मतान्तर विश्वभर में छा गये,
जो सो रहे थे जग गये, अब देव दानव बन गये।
कानन अगम सब कट गये, हर ठौर उपवन हो गये,
आखेट कर जो पेट भरते थे कृषक वे हो गये॥ २२ ॥
ये कर्म हैं उस काल के सब जबकि हम गिरने लगे,
हम आप गिरते जा रहे थे, सोचने पर क्यों लगे।
जिस वेग से आगे बढ़े थे शतगुणे गिर कर पड़े;
विद्या-कला-कौशल सभी के चक्र उल्टे चल पड़े॥ २३ ॥

---

* पूर्वार्द्ध।

हम रत्न से कंकड़ हुये, हम राव थे, अब रंक है;
होकर अहिंसा-स्रोत की झख मर रही अघ-पंक है।
कितना बढ़ा है ? बढ़ रहा फिर घोर पापाचार है,
श्रीमंत का अब दीन पर होता निरंतर वार है ॥ २९ ॥

भूमी हमारी काल-दर में गप्प यों हो जायगी;
फिर यत्न कितने भी करो, फिर तो न मिलने पायगी।
पुरुपार्थ में ही अर्थ है हे बंधुओ ! यदि स्वाँस हो;
दोंह खड़े अखिलेश है, यदि ईश में विश्वास हो ॥ ३० ॥

दिनकर हमारा खो गया, अब रात्रि का विश्राम है !
करवाल लेकर काल अब फिरता यहाँ उद्दाम है!
हे नाथ ! आँखो देखते हो, मौन कैसे हो रहे ?
क्या पापियो को पाप का तुम भोगने फल दे रहे ? ॥ ३१ ॥

हमारे पूर्वज

मैं उन असीमाधार की सीमा कहूँ कैसे ? कहो;
क्या नीरधर जलराज को भी कर सके खाली ? कहो।
मै रश्मि हूँ, वे रश्मिमाली, वे उदधि, घटवान मैं,
संगीत वे, सारंग-पाणी, क्या करूँ गुणगान मैं ! ॥ ३२ ॥

है गान उनके गूँजते अब भी गगन, जलधार में,
पवमान, कानन, अनल में अरु फूट कर तल पार में।
पिक, केकि, कोका, सारिका सब गान उनके गा रहे;
पर हाय ! मेरे तार विगलित स्वर बिगाड़े रो रहे ॥ ३३ ॥

करते नहीं थे कर्म ऐसा की किसी को कष्ट हो;
सब एक सर के मीन थे फिर क्यों किसी से रुष्ट हो।
आचार मे, व्यवहार मे, सन्मार्ग में सब एक थे,
मृगराज, गौ, मृग, गज, अजा जल घाट पीते एक थे ॥ ३६ ॥

साहित्य उनने जो लिखा वह क्या लिखेगी शारदा,
आसीन थीं उन पूर्वजो के मुख-कमल पर शारदा।
उन ज्ञानगरिमागार के जो गान गायक गा रहे,
मृतलोक से सुर लोक में वे है बुलाये जा रहे ॥ ४० ॥

कृतकाल मे कलिकाल का वे स्वप्न खलु थे देखते;
सर्वज्ञ थे, सब काल दर्शी, क्यो न ऐसा पेखते।
वे प्रलय तक के हाल सब हैं लिख गये, लिखवा गये,
कौशल कला-विज्ञान के भंडार पूरे भर गये ॥ ४१ ॥

हम देखते है ठीक वैसा जिस तरह श्रुति कह रहे,
हैं आज घटना-चक्र उनके शब्द अनुसर घट रहे।
विश्वास उनके कथन में फिर भी हमे होता नहीं,
हा ! क्या करे ? यह काल जब करने हमें देता नहीं ॥ ४२ ॥

है कौन ऐसा मनुज वर जो साम्य उनका कर सके ?
बल, ज्ञान, तप, व्यवहार में जो होड़ उनको कर सके।
क्या जगमगाती दीप-बाती साम्य रविका कर सकी ?
हो क्या गया यदि कीट पर अधिकार स्थिर भी कर सकी ॥ ४३ ॥

द्वादश[२२] हमारे चक्र-पाणी धर्म-ध्वज लहरा गये;
नवदेव[२३], नवप्रतिवासुसुर[२४] कौशल अनन्वय कर गये।
उस मोक्ष-चेता भूप का बस भरतचक्री[२५] नाम था;
जिस पर पड़ा इस देश का भारत अनन्वय नाम था ॥ ४९ ॥

अरिहत जिनवर षट् अष्टादश[२६] हमारे होगये;
तप, तेज, वल, शुचि शील की वे सीम अन्तिम होगये।
किन्नर, सुरासुर, मनुज के वे लोक-लोका-धीप थे,
निरपेक्ष थे, निर्लेप थे, परमात्म चक्राधीप थे ॥ ५० ॥

सब राज-कुल-सम्पन्न थे, सब सार्वभौमिक भूप थे,
नरराज थे, नर-रूप में अखिलेश के सब रूप थे।
साम्राज्य इनका सुखद था, दुख, शोक, चिन्ता थी नहीं,
मिथ्या-अहिंसामय कहीं भी स्थान मिलता था नहीं ॥ ५१ ॥

इनके अनूपम त्याग की नर कौन समता कर सका ?
साम्राज्य, सुख, परिवार यों नर कौन तृणवत तज सका ?
उपसर्ग सहकर भी कभी दुर्भाव थे भाते नहीं,
इनके उरों में वन्धु-रिपु के भेद जगते थे नहीं ॥ ५२ ॥

वे शान्ति में विग्रह कभी उत्पन्न करते थे नहीं;
क्रिमि, कीट का भी अर्थ हित अपकार करते थे नहीं।
धन-माल, वैभव, राज से उनको न कुछ भी लोभ था,
आत्मार्थ तजते विश्व को उनको न होता क्षोभ था ॥ ५३ ॥

दे दान कंचन का प्रथम जल-पान करना चाहिए,
आये हुए का द्वार पर सत्कार होना चाहिए।
नृप कर्ण,[३९] राजर्षी बली[४०] ये वीर दानी हो गये,
ये प्राण रहते याचकों की तृप्ति मन की कर गये ॥ ५९ ॥

गोपाल, यदुपति, नंदनदन, गोप-वल्लभ, कृष्ण वा,
राधारमण, मोहन, मधुसुदन, द्वारकापति विष्णु वा,
गिरिधर, मुरारी, चक्र-पाणी एक के सब नाम हैं;
मुरली पति वासुदेव[४१] के सब कर्म भी अभिराम हैं ॥ ६० ॥

लव-कुश[४२] तथा अभिमन्यु[४३] जैसे वीर बालक थे यहाँ,
रण-शौर्य्य जिनका देख कर सुर रह गये स्तभित जहां।
सुकुमार नेमिनाथ[४४] का बल, आत्मबल भूले नहीं,
अन्यत्र ऐसे वीर बालक आज तक जन्मे नहीं ॥ ६१ ॥

गणितज्ञ कितने हैं यहाँ? हो सामने आकर खड़े,
गिनिये दयाकर वीर[४५] मे कितने कड़े संकट पड़े?
आदर्श ऐसे एक क्या लाखों तुम्हे मिल जायँगे,
जग! शान्तिपूर्वक ढूँढ लो; वे तो अनन्वय पायँगे ॥ ६२ ॥

पर हाय! फूटे भाग है, इतिहास पूरा है नहीं,
जिन पार्श्व[४६] प्रभु के पूर्व की तो झलक पड़ती है कहीं।
हा! एक सरिता की कहो ये शाख दो कैसे हुईं?
ये जैन वैदिक निम्नगायें किस तरह क्यों कर हुईं? ॥ ६३ ॥

हे बंधुओ इन पूर्वजों का मान करना सीख लो;
गुण. भाव इनके देखकर अनुकार करना सीख लो।
ये धर्म की शिव्र कर्म की थी ज्योतिधर प्रतिमूर्तियें,
इनके उरो में थी अहिंसा की तरंगित उर्मियें॥ ६९॥

कैसे प्रसारक धर्म के ये धर्म-केतन हो गये,
किनमें? कहाँ तुम ढूंढते? ये रत्न तुम में हो गये।
ये त्याग के, वैराग्य के आदर्श अनुपम रख गये,
जग से नहीं कुछ लेगये, जग को अमर धन दे गये॥ ७०॥

कैत्रिम्य इन मे आज का-सा नाम को भी था नहीं,
यो बन्धु-रिपु की भावना इनके उरो मे थी नहीं।
आध्यात्म-सर के ये सभी नित पद्म रहते थे खिले,
सबके लिये इनके हृदय के द्वार रहते थे खुले॥ ७१॥

अरिहत २४

विचरण जहाँ इनका हुआ सुख-शान्ति-रस सरसा गया,
योजन सवासौ प्रांत मे दुखमूल जड़ से उड़ गया।
दश चार लोकालोक के सुर, इन्द्र इनको पूजते;
पैतीस गुणयुत वचन में अरिहंत के स्वर कूँजते॥ ७२॥

सिद्ध २५

ये अष्ट कर्मों का भयंकर काट दल आगे बढ़े;
त्रयरत्न-धारी ये हमारे मोक्ष-पद पर जा चढ़े।
अपवर्ग से ये पुरुष वर क्या लौट कर फिर आयेंगे?
उजड़े हुये क्या देश को आबाद फिर कर जायेंगे?॥ ७३॥

पाखण्ड, मिथ्या, पाप का उस काल में नहिं अंश था;
पापी, नराधम मनुज का उन्मूल ही तब वंश था।
नरभूप गर्दभने[६५] जहाँ दुष्भाव आर्या पर किया,
मुनिकालिकाचार्यार्य[६६] ने कैसा वहाँ था प्रण किया ॥ ७९ ॥

जिस काल इन्द्राचार्य[६७], तिलकाचार्य[६८], द्रोणाचार्य[६९] थे,
श्रीमल्लवाद्याचार्य[७०], सूराचार्य[७१], वीराचार्य[७२] थे,
मुनिवर जिनेश्वर[७३] जीव देवाचार्य[७४] दुर्गाचार्य[७५] थे,
उस काल भारत आर्य था, इसके निवासी आर्य थे ॥ ८० ॥

श्रीमानतुंगाचार्य[७६] ने पद-बंध चौमालीस से—
खण्डित किये पद-बंध, पाया मान मनुजाधीश से।
गुरु थे सुहस्ती[७७] आर्य को सम्राट संप्रति[७८] मानते,
आदर्श का आदर्श ही सम्मान करना जानते ॥ ८१ ॥

श्री मानदेवाचार्य[७९] के, श्री अभयदेवाचार्य[८०] के,
वेताल वादी शान्ति[८१] मुनि के, बप्पभट्टाचार्य[८२] के,
वर्णन गुणार्णव का करूँ कैसे भला मैं वर्ण में।
पर भान-पा सकते नहीं आदित्य का क्या किरण में? ॥ ८२ ॥

जिनदत्त[८३], कुशलाचार्य[८४], जिनप्रभ[८५] युग-प्रभावक हो गये,
श्री चन्द्रसूरीश्वर[८६] प्रभाचन्द्रार्य[८७] मुनिमणि हो गये।
पडित शिरोमणि आर्य आशाधर[८८] अमितगति[८९] आर्य-से—
विश्रुत 'जगत' में होगये साहित्य-सेवा कार्य से ॥ ८३ ॥

सहयोग उनका था सदा प्रति मानवोचित कर्म में;
थीं रोकती जाते हुए नर को सदा दुर्वर्त्म मे।
सम भाग जो नर-कर्म में इनका न यदि होता कहीं;
वह भूत भारतवर्ष का गौरव-भरा होता नहीं॥ ८९॥

शुचि शील के शिव ताप से पावक बदल जल हो गया[11],
ज्यों-ज्यों दुशासन चीर खींचे चीर त्यों त्यों बढ़ गया[12]।
आदेश से उनके कहो क्या कुष्ट नहि था मिट सका,
श्रीपाल का कुष्टी बदन कंचन नहीं क्या बन सका[13]?॥ ९०॥

पति दुःखमोचन के लिये थी आप शैव्या[14] बिक गई,
तारा[15] कुसुमबाला[16] कहो किस देश में है हो गई?
वे संग रहकर कंथ के रणमें सदा लड़ती रहीं;
थीं निज करोंसे पुत्र, पति को भेजती रण में रहीं॥ ९१॥

प्रत्यक्ष मानो देवियाँ थीं, ऋद्धियाँ मृत-वर्ग की;
आनद घरमें मिल रहा था, चाह नहि थी स्वर्ग की।
सुर-स्थान की सप्राप्ति मे अपमान हम थे जानते,
जब हो रहे थे मोक्ष पद के कर्म—क्यों नहि मानते?॥ ९२॥

चल चालिनी से भी सुभद्रा[17] सींचती जल है अहो!
चढ़ती अनल को भी शिवा[18] उपशाम करती है अहो!
काटे हुए भी हाथ जिसके फिर यथावत हो रहे[19], !
इन शील-प्राणा नारियों के गान घर घर हो रहे॥ ९३॥

ये देखिये इस ठौर पर हैं प्रश्न कैसे हो रहे!
विदुषी जयन्ती[११४] को स्वयं भगवान उत्तर दे रहे।
इन भूत दत्ता[११५], यक्षा दत्ता का स्मरण-बल देखिये,
फिर सप्त बहिनों के लिये उपमान जग में लेखिये॥ ९९ ॥

ये लक्ष्मियाँ थी, देवियाँ थीं, ऋद्धियों थीं, सिद्धियाँ,
तन, मन, वचन अरु कर्म से करतीं रहीं नित वृद्धियाँ।
ये थीं सुधा, गृह था सदा देवामृताकर, सुख भरा,
ऋतुराज का चहुँ राज्य था, सब भाँति हर्षित थी धरा॥ १०० ॥

ऐसा न कोई कर्म था जिसमें न इनका योग हो,
घर मे तथा बाहर सदा इनका प्रथम सहयोग हो;
गार्हस्थ्य-सुख को देख कर थे देव मोहित हो रहे,
नरलोक को सुरलोक से सब भाँति बढ़कर कह रहे॥ १०१ ॥

पूर्वज हमारे देव थे, नर-नारियाँ थी, देवियों,
थीं मनुज-मानस को अलौकिक कान्त-दर्शी उर्मियाँ।
इनके सुभग अनुचर्य्य से कृतकाम पूर्वज हो गये,
हम आम्रतरुवर-डाल पर फल हाय! कटु क्यो लग गये॥ १०२ ॥

ये थीं किशोरी वृन्दा-राजी, शील-धन पति-लोक था;
ये ध्येय थीं, वे ध्यान थे, परिव्याप्त प्रेमालोक था।
जमदग्नि[११६], कौशिक[११७], इन्द्र तक जिस मार्ग विचलित हो गये;
उस मार्ग में ही शील के शुचि पुष्प इनके खिल गये॥ १०३ ॥

था जाति से नहि नेह अनुचित, बन्धु से नहिं राग था;
कुछ मोह माया में न था, कुछ शक्ति में नहि राग था।
हम सार्वभौमिक ऐश को जो छोड़ते देरी करें,
ज्योतिष, पुरंदर, सुर हमारी किस तरह सेवा करें ? ॥ १०९ ॥

हमने हमारे राज्य में किस को बताओ दुख दिया,
क्रिमि कीट का भी जानते हो मनुजवत रक्षण किया।
क्या दण्ड से भी है कभी जग-शान्ति स्थापित हो सकी ?
जलती अनल जल-धार बिन उपशाम किस से होसकी ? ॥ ११० ॥

धन-द्रव्य-नारी-अपहरण उस काल में होते न थे,
संभव कहो कैसे कहे, जब पुष्प हम छूते न थे।
त्रियंच, मनुज, जड़ आदि में सब प्रेमयुत व्यवहार था,
सब प्रेम के ही रूप थे, सब प्रेममय संसार था ॥ १११ ॥

हम काल को तो कवल से भी तुच्छतर थे मानते,
हम मुक्ति, सुरपद का इसे बस यान केवल जानते।
यह यान था, इस पर चढ़ें हम जा रहे शिव धाम थे,
कोई न हमको भीति थी, जीवन परम अभिराम थे ॥ ११२ ॥

याचक हमारे सामने जो आगया वह बन गया,
सर्वस्व उसको दे दिया, कुछ वचन फिर भी ले गया।
हम गिर गये थे, पर गिरे को हम उठाते नित रहे;
निर्जीव को जीवन हमारे प्राण नित देते रहे ॥ ११३ ॥

आलोचना करते सदा थे भोर में निशिचार की;
करते सदा फिर साँझ को दिन मे किये व्यापार की।
थे मास की अरु पक्ष की भी कर रहे आलोचना,
वर्षान्त में करते तथा सांवत्सरिक आलोचना ॥ ११९ ॥

जीवन हमारा देख कर सुर, इन्द्र भी अनुचर हुए,
प्रति कर्ममे जो थे अथक सहयोग दे सहचर हुए।
ऐसे अनूठे कर्म-प्राणा क्या कहीं देखे गये ?
बस मोक्ष-जेता, भव-विजेता हम हमीं से हो गये ॥ १२० ॥

क्या होगया जो आज हम अघ-पक में है सड़ रहे,
आकादि के जो शुष्क उड़ कर पत्र हम पर पड रहे।
यह पुण्य-जल से जिस समय सरवर भरा हो जायगा;
हम पक मे पकज खिलेंगे आवरण हट जायगा ॥१२१॥

ये गर्व इतना कर रहे है 'रेडियो' 'नभयान' पर;
यह तो बतादे—ज्ञान इनका है मिला किस स्थान पर।
हे 'शब्द' रूपी यह कहो किसने तुम्हे पहिले कहा ?
सुर-यान यदि होते नहीं, नभयान क्या होते यहाँ ? ॥१२२॥

हम भवन पर बैठे हुए थे जग बदरवत देखते,
है क्या, कहाँ पर हो रहा—सब मुकुरवत थे पेखते।
तन-मन-वचन में, कर्म मे सबके हमारा वास था;
अज्ञेय हो—ऐसा न कोई दीखता नर-वास था ॥१२ ॥

आस्ट्रेलिया अरु एशिया, यूरोप, अरबीस्थान को,
दुनिया नयी, अरु अफ्रीका, ईराक अरु ईरान को[११९]—
हम पूर्व तुम से जा चुके, इतिहास देखो खोल कर।
तुमने नया है क्या किया दुनिया नयी को खोज कर ? ॥१२९॥

जो तुम पुराने ग्रथ कुछ भी नेत्र-भर भी देख लो;
संवध कैसे थे हमारे—तुम परस्पर पेखलो।
हम भूप थे, वे थीं प्रजा, थे प्रेम-बन्धन जुड रहे,
हो बहन भाई धर्म के ज्यो, रस परस्पर जग रहे ॥ १३० ॥

सम्पन्न होकर भी नहीं हम भोग में आसक्त थे,
हम दान जीवन दे रहे थे, आप जीवन-मुक्त थे।
जीवन-मरण के तत्त्व सारे थे करामल हो रहे,
सत्कर्म करने मे तभी हम इस तरह थे बढ़ रहे ॥ १३१ ॥

हम आदि करके कर्म को थे मध्य में नहिं छोडते;
सागर हमारा क्या करे ! हम शुष्क करके छोड़ते।
हम पर्वतों को तोड़ कर समतल धरा कर डालते,
भू, अनल, नभ, वायु, जल आदेश नहि थे टालते ॥ १३२ ॥

'परमार्थ हित ही थे हमारे कर्म सारे हो रहे,
कैत्रिम्यता पर इस तरह से थे नहीं हम मर रहे।
यूरोप के अब देश जो उन्नत कहे हैं जा रहे,
वे क्या कभी बतलायेंगे किस देश के अनुचर रहे ॥ १३३ ॥

ब्राह्मण-कलेवर की कहो काया-पलट किसने करी ?
हिंसामयी थी वृत्ति उसकी वीर[१२३] ने अपहृत करी।
पाकर हमारा योग ये ब्राह्मण अभी तक जी सके;
हो भिन्न हमसे बौद्ध जन कबके किधर को जा चुके ॥ १३९ ॥

व्याख्यान मे ये मिश्र[१२४] जी वेदान्त-चर्चा कर रहे,
प्राचीनतम सबसे हमारे जैन-दर्शन कह रहे।
व्याख्यान अपने मे तिलक[१२५] सुन लीजिये क्या कह रहे,
सबसे पुरातन जैन-दर्शन-शास्त्र ही बतला रहे ॥ १४० ॥

गोविद वरदा[१२६] कान्त के मन्तव्य भी तुम लेख लो;
फिर कृष्ण[१२७] शर्मा आदि की भी मान्यताएँ पेख लो।
गिरनार[१२८], हर्टलजान्स[१२९] के मन्तव्य भी तुम देखना,
फिर आदि के संवत् विषय मे ध्यान से अवलेखना ॥ १४१ ॥

प्राचीनता को नष्ट जो भी है हमारी कर रहे,
वे द्वेष या अज्ञानता से इस तरह है कर रहे।
स्वाध्याय अरु सद्भाव वे ज्यो ज्यो बढ़ाते जायँगे,
हम को अगाऊ पायँगे, वे गुण हमारे गायँगे ॥ १४२ ॥

श्रुति वेद हमको आज भी है पूर्वतम बतला रहे,
विद्वान, कोविद, वेदविद स्वीकार हम को कर रहे।
ज्यो ज्यों अधिक भूगर्भ जन उत्कीर्ण करते जायँगे,
षड्खण्ड में पद-चिह्न वे हर स्थल हमारे पायेंगे ॥ १

ब्राह्मण-कलेवर की कहो काया-पलट किसने करी ?
हिंसामयी थी वृत्ति उसकी वीर[123] ने अपहृत करी।
पाकर हमारा योग ये ब्राह्मण अभी तक जी सके,
हो भिन्न हमसे बौद्ध जन कबके किधर को जा चुके ॥ १३९ ॥

व्याख्यान मे ये मिश्र[124] जी वेदान्त-चर्चा कर रहे,
प्राचीनतम सबसे हमारे जैन-दर्शन कह रहे।
व्याख्यान अपने में तिलक[125] सुन लीजिये क्या कह रहे,
सबसे पुरातन जैन-दर्शन-शास्त्र ही बतला रहे ॥ १४० ॥

गोविद वरदा[126] कान्त के मन्तव्य भी तुम लेख लो,
फिर कृष्ण[127] शर्मा आदि की भी मान्यताएँ पेख लो।
गिरनार[128], हर्टलजान्स[129] के मन्तव्य भी तुम देखना,
फिर आदि के संवत् विषय मे ध्यान से अवलेखना ॥ १४१ ॥

प्राचीनता को नष्ट जो भी है हमारी कर रहे,
वे द्वेष या अज्ञानता से इस तरह है कर रहे।
स्वाध्याय अरु सद्भाव वे ज्यों ज्यों बढ़ाते जायँगे,
हम को अगाऊ पायेंगे, वे गुण हमारे गायँगे ॥ १४२ ॥

श्रुति वेद हमको आज भी है पूर्वतम बतला रहे,
विद्वान, कोविद, वेदविद स्वीकार हम को कर रहे।
ज्यों ज्यो अधिक भूगर्भ जन उत्कीर्ण करते जायँगे,
षड्खण्ड में पद-चिह्न वे हर स्थल हमारे पायेंगे ॥ १४३ ॥

हमारा साहित्य

साहित्य-सरवर है हमारा कमल-भावों से भरा,
जिसमें अहिंसा जल-तरंगें छहरती हैं सुन्दरा।
शुचि शील सौरभ से सुगन्धित हो रही है भारती,
सद्ज्ञान परिमल-युक्त यह सलिलोर्मि करती आरती॥ १५९॥

उस आदि प्राकृत में हमारा बद्ध सब साहित्य है;
पर आज प्राकृत-भाषियो का अस्तमित आदित्य है!
ऐसे न हम विद्वान हैं—अनुवाद रुचिकर कर सकें!
जैसा लिखा है, उस तरह के भाव में फिर रख सकें!॥ १६०॥

है बहुत कुछ तो मिट गया, अवशिष्ट भी मिट जायगा;
हो जायगा वह नष्ट जो कर में हमारे आयगा!
हे आदि जिनवर! आपके ये वाक्य हितकर मिट रहे!
उद्दाम होकर फिर रहे हम, हैं परस्पर लड़ रहे!॥ १६१॥

भण्डार जयसलमेर[164], पाटण के[165] हमारे लेख्य हैं,
क्रिमि, कीट, दीमक खा रहे उनको वहाँ पर—पेख्य है!
मुद्रित करालें आप हम, यह भाव भी जगता नहीं!
भवितव्यता कैसी हमारी, जान कुछ पड़ता नहीं!॥ १६२॥

आगम—

हा! लुप्त चौदह[166] पूर्व तो हे नाथ! कब से हो गये!
हा! कर्म-दर्शक शास्त्र ये कैसे मनोहर खो गये!
जब नाम उनका देखते है, हाय! रो पड़ते विभो!
कैसे मनोहर नाम है! सिद्धान्त होगे क्या, प्रभो?॥ १६३॥

हमारा साहित्य

साहित्य-सरवर है हमारा कमल-भावों से भरा,
जिसमें अहिंसा जल-तरंगें छहरती है सुन्दरा।
शुचि शील-सौरभ से सुगन्धित हो रही है भारती,
सद्ज्ञान परिमल-युक्त यह सलिलोर्मि करती आरती ॥ १५९ ॥

उस आदि प्राकृत में हमारा बद्ध सब साहित्य है,
पर आज प्राकृत-भाषियों का अस्तमित आदित्य है!
ऐसे न हम विद्वान हैं—अनुवाद रुचिकर कर सकें!
जैसा लिखा है, उस तरह के भाव में फिर रख सकें! ॥ १६० ॥

है बहुत कुछ तो मिट गया, अवशिष्ट भी मिट जायगा;
हो जायगा वह नष्ट जो कर में हमारे आयगा!
हे आदि जिनवर! आपके ये वाक्य हितकर मिट रहे!
उद्दाम होकर फिर रहे हम, हैं परस्पर लड़ रहे! ॥ १६१ ॥

भण्डार जयसलमेर[१६४], पाटणके[१६५] हमारे लेख्य हैं;
क्रिमि, कीट, दीमक खा रहे उनको वहाँ पर—पेख्य है!
मुद्रित करालें आप हम, यह भाव भी जगता नहीं!
भवितव्यता कैसी हमारी, जान कुछ पड़ता नहीं! ॥ १६२ ॥

आगम—

हा! लुप्त चौदह[१६६] पूर्व तो हे नाथ! कब से हो गये!
हा! कर्म-दर्शक शास्त्र ये कैसे मनोहर खो गये!
जब नाम उनका देखते हैं, हाय! रो पड़ते विभो!
कैसे मनोहर नाम हैं! सिद्धान्त होंगे क्या, प्रभो? ॥ १६३ ॥

यह मत अहिसावाद का शिव-शान्ति का संदेश है,
हर ग्रन्थ को तुम देख लो, उसमें यही आदेश है।
हम कह चुके थे ये कभी से पूर्व लाखों वर्ष ही,
है कर रहा उपदेश फिर भी आज भारतवर्ष ही ॥ १६९ ॥

अंग १७१

साहित्य कितना उच्च है? तुम अंग पढ़कर लेख लो;
आचार का, व्यवहार का सब मर्म उनमें पेख लो।
व्रत, सत्य, सयम, शील का उपदेश इनमें है भरा,
अवलोकते ही कह पड़ोगे—क्या विवेचन है करा! ॥ १७० ॥
तुम ग्रन्थ आचारांग-से कुछ ढूँढ़ कर तो दो बता,
सूत्रोत्तराध्ययन तुमको हम बाद में देंगे बता।
अनुयोग, नंदीसूत्र का हरि-द्वार तुमको खोल दे;
ये मुक्ति-माणिक-रत्न-भूत हैं—आपको अनमोल दें ॥ १७१ ॥

उपांग १७२

सद्भाव कहते है किन्हे, क्या रूप उनका सत्य है?
तप, दान, ब्रह्माचार क्या हैं? क्या अहिंसा कृत्य है?
अपवर्ग, ग्रह, नक्षत्र का यदि विशद वर्णन चाहिए।
तब द्वादशोपांग तुमको आद्यन्त पढ़ने चाहिए ॥ १७२ ॥

पयन्ना १७३

ये दश पयन्ना ग्रन्थ तुमने आज तक देखे नहीं!
जिनराज, त्यागी, सिद्ध के क्या रूप हैं—पेखे नहीं।
स्याद्वाद कहते है किसे? क्या मोक्ष का सद्रूप है?—
ये मोक्ष-जिनपद-मर्म के साहित्य-दर्पण रूप है ॥ १७३ ॥

जिनराज-वाङ्मय-कोप में ऐसे अनेको ग्रंथ है,
आत्माभिसाधन के लिये बस एक वे शिव-पथ है।
भवभावना[179], जीवानुशासन[180], पुष्पमाला[181] लेखिये,
द्वादशकुलक[182],निर्वाणकलिका[183],भावसंग्रह[184] देखिये॥१७९॥

न्याय—

हम सप्तभंगी[185] ग्रंथ का यों कर रहे अभिमान है;
उपहॉस के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है ?
इस लोक के, परलोक के सब मर्म इसमे है भरे,
यह पार्थमय संसार मे आलोक स्वर्गिक है अरे ! ॥ १८० ॥

संसार-भर के ग्रंथ-गिरि पर चाह से पहिले चढ़ो,
पापाण, तरुवर, पात पर उत्कीर्ण भावों को पढ़ो,
नयवाद-भूमी में हमारी उतर कर विश्राम लो,
निःकृष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ फिर है कौन ?—उसका नाम लो ॥ १८१ ॥

साहित्य-जग में जैन-दर्शन-न्याय अति विख्यात है,
पच्चास पुस्तक इस विपय की उत्तमोत्तम ख्यात हैं।
स्याद्वाद[186], न्यायालोक[187], अरु मार्त्तण्ड[188] विश्रुत ग्रंथ हैं,
कादम्बरी, रघुवंश के ये जोड़ के सब ग्रंथ हैं ॥ १८२ ॥

पुराण १८९

रचना [illegible] कहो [illegible] नोहर गम्य है !
अन्तर्जगत का [illegible] पर रम्य है !
[illegible] स, -चरित [illegible] हम कह सकें,
[illegible] ॥ [illegible] ॥

जिनराज-वाङ्मय-कोष में ऐसे अनेकों ग्रंथ हैं,
आत्माभिसाधन के लिये बस एक वे शिव-पथ हैं।
भवभावना[१७९], जीवानुशासन[१८०], पुष्पमाला[१८१] लेखिये,
द्वादशकुलक[१८२], निर्वाणकलिका[१८३], भावसंग्रह[१८४] देखिये॥१७९॥

न्याय—

हम सप्तभंगी[१८५] ग्रंथ का यों कर रहे अभिमान है,
उपहाँस के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है?
इस लोक के, परलोक के सब मर्म इसमें हैं भरे;
यह पार्थमय संसार में आलोक स्वर्गिक है अरे! ॥ १८० ॥

संसार-भर के ग्रंथ-गिरि पर चाह से पहिले चढ़ो,
पाषाण, तरुवर, पात पर उत्कीर्ण भावों को पढ़ो,
नयवाद-भूमी में हमारी उतर कर विश्राम लो;
निःकृष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ फिर है कौन ?—उसका नाम लो ॥ १८१ ॥

साहित्य-जग में जैन-दर्शन-न्याय अति विख्यात है,
पचास पुस्तक इस विषय की उत्तमोत्तम ख्यात है।
स्याद्वाद[१८६], न्यायालोक[१८७], अरु मार्त्तण्ड[१८८] विश्रुत ग्रंथ हैं,
कादम्बरी, रघुवंश के ये जोड़ के सब ग्रंथ हैं ॥ १८२ ॥

पुराण १८९

रचना पुराणों की कहो कितनी मनोहर गम्य है!
अन्तर्जगत, संसार का लेखा यहाँ पर रम्य है!
इतिहास, आगम, नर-चरित इनको सभी हम कह सकें,
सद्चित्र इनको भूत भारतवर्ष के हम कह सकें ॥ १८३ ॥

जिनराज-वाङ्मय-कोष में ऐसे अनेकों ग्रंथ हैं,
आत्माभिसाधन के लिये बस एक वे शिव-पथ हैं।
भवभावना[१७९], जीवानुशासन[१८०], पुष्पमाला[१८१] लेखिये,
द्वादशकुलक[१८२],निर्वाणकलिका[१८३],भावसग्रह[१८४] देखिये॥१७९॥

न्याय—

हम सप्तभंगी[१८५] ग्रंथ का यों कर रहे अभिमान है,
उपहाँस के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है ?
इस लोक के, परलोक के सब मर्म इसमें है भरे;
यह पार्थमय संसार में आलोक स्वर्गिक है अरे!॥ १८० ॥

संसार-भर के ग्रंथ-गिरि पर चाह से पहिले चढ़ो,
पाषाण, तरुवर, पात पर उत्कीर्ण भावों को पढो,
नयवाद-भूमी में हमारी उतर कर विश्राम लो,
निःकृष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ फिर है कौन ?—उसका नाम लो॥ १८१ ॥

साहित्य-जग में जैन-दर्शन-न्याय अति विख्यात है,
पच्चास पुस्तक इस विषय की उत्तमोत्तम ख्यात है।
स्याद्वाद[१८६], न्यायालोक[१८७], अरु मार्त्तण्ड[१८८] विश्रुत ग्रंथ है,
कादम्बरी, रघुवंश के ये जोड़ के सब ग्रंथ है॥ १८२॥

पुराण १८९

रचना पुराणों की कहो कितनी मनोहर गम्य है!
अन्तर्जगत, संसार का लेखा यहाँ पर रम्य है!
इतिहास, आगम, नर-चरित इनको सभी हम कह सकें;
सद्चित्र इनको भूत भारतवर्ष के हम कह सकें॥ १८३ ॥

जिनराज-वाङ्मय-कोष में ऐसे अनेकों ग्रंथ है,
आत्माभिसाधन के लिये बस एक वे शिव-पंथ है।
भवभावना[१७९], जीवानुशासन[१८०], पुष्पमाला[१८१] लेखिये;
द्वादशकुलक[१८२],निर्वाणकलिका[१८३],भावसग्रह[१८४] देखिये।।१७९।।

न्याय—

हम सप्तभंगी[१८५] ग्रंथ का यों कर रहे अभिमान है,
उपहॉस के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है?
इस लोक के, परलोक के सब मर्म इसमें है भरे,
यह पार्थमय संसार मे आलोक स्वर्गिक है अरे!।। १८० ।।

संसार-भर के ग्रंथ-गिरि पर चाह से पहिले चढ़ो,
पाषाण, तरुवर, पात पर उत्कीर्ण भावों को पढ़ो,
नयवाद-भूमी में हमारी उतर कर विश्राम लो,
निःकृष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ फिर है कौन?—उसका नाम लो।। १८१ ।।

साहित्य-जग में जैन-दर्शन-न्याय अति विख्यात हैं,
पच्चास पुस्तक इस विषय की उत्तमोत्तम ख्यात हैं।
स्याद्वाद[१८६], न्यायालोक[१८७], अरु मार्त्तण्ड[१८८] विश्रुत ग्रंथ हैं;
कादम्बरी, रघुवंश के ये जोड़ के सब ग्रंथ हैं ।। १८२ ।।

पुराण १८९

रचना पुराणों की कहो कितनी मनोहर गम्य है!
अन्तर्जगत, संसार का लेखा यहाँ पर रम्य है!
इतिहास, आगम, नर-चरित इनको सभी हम कह सकें;
सद्चित्र इनको भूत भारतवर्ष के हम कह सकें।। १८३ ।।

व्याकरण—

छोटे बड़े चालीस लगभग व्याकरण के ग्रंथ है,
साहित्य वर्णाकीर्ण गिरिके ये सभी हरि-पंथ हैं।
सम्पन्नता सब भाँति ये साहित्य की बतला रहे,
साहित्य-सरके पार हमको यान ये पहुंचा रहे ॥ १८९ ॥
यह शाकटायन[197] व्याकरण सबसे अधिक प्राचीन है;
श्री हेमचन्द्राचार्य्यकृत[198] व्याकरण उपमाहीन है।
व्युत्पत्ति से हर शब्द की उत्पत्ति हमने है करी;
संस्कृत[199] सुता है मातृ-भाषा आदि प्राकृत[200] की खरी ! ॥१९०॥

कोष—

कुछ हेमकृत उस कोष[201] की जाटिल्यता तो लेखिये;
प्रत्येक अक्षर के वहाँ बस अर्थ नाना पेखिये।
राजेन्द्र सूरीश्वर रचित अभिधान[202] नामा कोष-से—
हैं कौन विश्रुत कोष जग में ?—ढूँढ लो सतोष से ॥ १९१ ॥

छंदोऽलंकार—

काव्यानुशासन[203] नाट्य[204] दर्पण वृत्ति कैसे ग्रंथ है ?
साहित्य पुष्पित हो रहा कर प्राप्त ऐसे ग्रंथ है।
अवयव सभी साहित्य के तुमको यहाँ मिल जायेंगे;
आवाल जिन-साहित्य को साहित्य-तरु का पायेंगे ॥ १९२ ॥

महाकाव्य—

उत्कृष्ट काव्यों से भरा साहित्य भूषित हो रहा;
ज्यों पद्म-सकुल रम्य सरवर हो मनोहर लग रहा।
है जोड के रघुवंशसंभव, मेघदूतेत्यादि के;
क्या शब्द-परिचय दे यहाँ परिशिष्ट पर्व[205] इत्यादि के ॥ १९३ ॥

ज्योतिष-शिल्प—

श्रीजन[206]ज्योतिष, भुवन[207]दीपक-से न ज्योतिष ग्रंथ हैं,
ज्योतिष[208]करण्डक विश्व-ज्योतिष में अनूपम ग्रंथ है।
विज्ञान ज्योतिष का भला कैसे न आविष्कार हो?
जब लग्न मुहुर्त के बिना होता न कुछ व्यापार हो॥ १९४॥

मंत्र ग्रन्थ—

वह मंत्र-बल तो बस हमारा देखने ही योग्य था,
मंत्र-बल से सुर-भुवन में गमन हमारा योग्य था।
अतएव विद्यारत्न[209], अद्भुत[210]सिद्धि पुस्तक लेख्य है,
आकाश[211]गामी पुस्तिका सब भाँति से अवपेख्य है॥ १९५॥

हाँ, ग्रन्थ चाहे आपको ऐसे कहाँ मिल जायँगे,
पर भाव, भाषा में अधिक फल वे न इनसे पायँगे।
नय-भिन्न-विवेचन जिस तरह हर तत्त्व का इनमें हुआ,
वैसा न वर्णन आज तक अन्यत्र ग्रन्थों में हुआ॥ १९६॥

ऐसा न कोई है विषय, जिस पर न हमने हो लिखा,
जिस पर कलम थी चल गई, उसको न फिर बाकी रखा।
इतिहास, ज्योतिष, नय, निगम, छन्दागमालंकार में।

कला-कौशल

कितनी कलाये थीं हमारी पूर्व, हम वतला चुके,
दश-चार विद्या-विज्ञ पूर्वज पार जिनका पा चुके।
चौपठ-कलाविद् थे पुरुष, सब थीं कलाविद् नारियें,
कौशल-कला में देवियें थीं उस समय सुकुमारियें॥ १९९॥

शिल्प-कला—

ये सब कलाये आज केवल पुस्तकों में रह गईं!
जब थे कलापति मर गये, सतियें कलाये हो गईं!
कुछ खण्डहर में रह गईं दब कर तथा भूगर्भ में!
विषण्ण वदन होकर पड़ीं कुछ वक्र विकृत दर्भ में! ॥ २००॥
ये आपको भग्नांश, पेखो दूर से ही दीखते,
हा! हंत! जिनमें चील काँवे निडर होकर चीखते।
जो अभ्र-भेदी थे कभी, वे आज रज में मिल गये,
आख्यान माण्डव[२१२], लक्ष्मणी[२१३] के हाय! विस्मृत हो गये॥ २०१॥
सुरकेत अर्बुद[२१४] शृङ्ग के, गिरिनार[२१५] पर्वत के अहो!
तारंग[२१६] पर्वत, सिद्ध[५१७] गिरि के चैत्य है कैसे कहो!
सम्मेत शेखर[२१८] के अभी भी चैत्यगृह सब है नये!—
वर्षा सहस्रो झेल कर यों रह सके कितने नये? ॥ २०२॥
उदयाद्रि[२१०] का अरु खण्डगिरि[२२०] का नाम तो होगा सुना,
कैसे कलामय स्थान हैं, यह भी गया होगा सुना।
ऐलोर[२२१], ऐजैंटा गुफाये ऐतिहासिक चीज है;
ये कर-कला के कोप है, ये सुर-विनिर्मित चीज है॥ २०३॥

मथुरा[222], बनारस[223], ओरिसा[224] की वह न शोभा है कहाँ,
पावापुरी[225], अमरावती[226] भी रम्य वैसी है नहीं,
पर मिल इनमें शिल्प के जो भी पुराने शेष हैं।
हा! गत हुई उस भारती के अंश ये अवशेष हैं ॥ २०४ ॥

यह एक प्रासाद का बना चोटिया गिरि का चैत्य है[227],
यह कल्पना ही है नहीं, ऐसी कला का कृत्य है।
इसके समा संसार में है शिल्प कोई भी नहीं,
अनुपम इसके एक दिन जिन शिल्प की गीता रही ॥ २०५ ॥

चित्र-कला—

वह चित्र-कौशल आज हा ! नरके न कर में रह गया;
कर में भला कैसे रहे ? कल में विचारा पिस गया !
चल-चित्र चलते देख कर अब हम अचम्भित हो रहे;
पड़कर चमक के चक्र मे हम भूल अपने को रहे । ॥ २०९ ॥

खलु चित्र-प्रिय हम थे सभी, बिन चित्र गृह था ही नहीं;
उन मंदिरों का चित्र-धन हम कह सके—सम्भव नहीं ।
प्रत्यक्ष था या चित्र था, कुछ था पता चलता नहीं;
थे चित्र[२३०] चलते-बोलते भ्रम क्यों भला फिर हो नहीं ? ॥२१०॥

प्रेमी मनुज को प्रिय-प्रिया की याद जो आती नहीं;
यह चित्र-कौशलकी कला निःसृत कभी होती नहीं ।
हम भक्त दृढ़ थे ईश के, परिवार से अनुराग था;
बढ़ता गया लाघव, यथा बढ़ता गया शुचि राग था ॥ २११ ॥

मूर्ति-कला—

करते न आविष्कार यदि हम मूर्ति जैसी चीज का;
मिलना कठिन होता अभी कुछ धर्म के भी बीज का ।
हो प्राण व्याकुल मूर्ति में हैं देखते भगवान को,
यह मूर्ति है भगवान की, यह शास्त्र है अज्ञान को ॥ २१२ ॥

हमको मनोविज्ञान का होता न यों सद्ज्ञान रे !
शिव भाव लाना मूर्ति मे क्या है कभी आसान रे ?
रस-धार करुणा-प्रेम की रे ! मूर्ति से बहती रहे;
वह भव्य भावोद्भाविनी तन, मन, वचन हरती रहे ॥ २१३ ॥

सब भाँति भक्तो के लिये यह मूर्ति ही आधार है,
योगीजनों के तो लिये भगवान यह साकार है।
कितना रसद लगता हमें है चित्र अपने बन्धु का,
फिर क्यों न सबको हो सुखद यह बिम्ब करुणासिन्धु का ॥२१४॥

भगवान कायोत्सर्ग में कैसे मनोहर लग रहे!
शिव भाव-तरुवर बिम्ब-तल पर क्या सुभग लहरा रहे!
वर्षा सुधा की दर्शकों के ये हृदय पर कर रहे,
पाषाण-उर के भाव-प्रस्तर भाव पंकज कर रहे ॥ २१५ ॥

संगीत कला—

संगीतमय चर-अचर है, संगीतमय सब लोक है,
संगीत का तो मनुज तो क्या, इन्द्र तक को शौक है।
अवहेलना हम इस कला की कर न सकते थे कभी,
संगीत, कीर्तन, नृत्य से विभु को रिझाते थे सभी ॥ २१६ ॥

गन्धर्व सारी जाति का संगीत ही व्यापार था,
इसने किया जग में प्रथम संगीत-आविष्कार था।
यदि मात्र जन मन के लिये यह स्वर-कला कल-मन्त्र हो,
हा! शान्ति-धाम हो जायगी यह भूमि भारत जाग हो ॥ २१७ ॥

जैन धर्म का विस्तार

यह जैन मत था विश्व-मत माना हुआ संसार में—
हैं चिह्न ऐसे मिल रहे कुछ ठौर, कंदर, गार में।
वत्सर अनंता पूर्व ही हम दिग्विजय थे कर चुके।
हा ! बहुत करके चिह्न तो अब तक हमारे मिट चुके ! ॥ २१९ ॥

कुछ चिह्न ऐसे है मिले आस्ट्रेलिया[२३२] इत्यादि में,
जिनसे पता चलता हमें, जग-धर्म था यह आदि में।
यह भूमि भारतवर्ष इसका आदि पैतृक वास है;
अतिरिक्त भारत के सभी जनपद रहे उपवास हैं ॥ २२० ॥

थे राम-रावण-से हमारे धर्म के नायक अहो !
रावण सरीखे भक्त क्या अन्यत्र जन्मे हैं कहो !
सब बन्धु यादव[२३३] वंश के छप्पन कोटी* जैन थे;
कितने मुरारी काल में भाई हमारे जैन थे ? ॥ २२१ ॥

मुख धर्म चारो वर्ण का था आदि से जिन धर्म ही;
क्षात्र-मत था, विप्र-मत था, था शूद्र-मत जिन धर्म ही।
अवतार इसके क्या नहीं है क्षात्र-कुल में से हुए ?
आचार्य, गणधर, साधु इसके वर्ण चारो से हुए ॥ २२२ ॥

उन ऋषभ जिनपति को सभी हैं अन्य मत भी मानते,
अवतार खलु हम ही नहीं, अवतार वे भी मानते।
ये चक्रपति महिभूप थे—पुस्तक पुरातन कह रहे,
जिस धर्म के हों ये प्रवर्तक, क्यो न वह चक्री रहे ? ॥ २२३ ॥

---

* जाति, गोत्र।

म हो दिगम्बर फिर रहे थे पुर, नगर, हर ग्राम में,
ो नग्न कोई फिर सके जाकर नगर अभिराम मे ?
म आज वैसे हैं नहीं, फिर भी दिगंबरवाद है,
ैनराज की जय बोल दो, पाखण्ड जिदावाद है ॥ २५९ ॥

श्रीमन्त व व्यापार

्यापार भारतवर्ष का था विश्व भर में हो रहा;
ंसार के प्रति भाग में था वास भारत कर रहा।
ृम वैश्य मृत व्यापार से ही आज तक विख्यात थे,
हैं गिर गये, पर उस समय व्यापार में प्रख्यात थे ॥ २६० ॥

संसार भर में घूम कर व्यापार हम थे कर रहे;
सर्वत्र जल-थल-व्योम-वाहन थे हमारे चल रहे।
थे यान भारतवर्ष से सब अन्न भर कर जा रहे,
मरकत, रजत, मणि, हेम से विनिमय वहाँ हम कर रहे ॥ २६१ ॥

व्यापार से परिचय परस्पर थे हमारे बढ़ रहे;
सौहार्द, ममता, प्रेम हम में उत्तरोत्तर जग रहे।
लगने लगा था विश्व कुल, भ्रातृत्व जग में जग रहा,
सम्बन्ध कन्या-ग्रहण का भी था परस्पर बढ़ रहा ॥ २६२ ॥

व्यापार में हम से बढ़ा था दीखता कोई नहीं,
जिस ग्राम में हम थे नहीं, वह ग्राम विश्रुत था नहीं।
सर्वत्र ही संसार में हाटें हमारी खुल रहीं;
सर्वत्र क्रय थे बढ रहे, विक्री अतुल थी बढ़ रही ॥ २६३ ॥

गणना हमारी मोहरों पर आज तक होती रही;
दश, पाँच, द्वादश, बीस कोटी ध्वज हमें कहती रही,
निर्धन हमारे सामने वर सार्वभौमिक भूप था;
वे दिन दिवस थे भाग्य के, यह दीन का नहिं रूप था ॥ २६९ ॥

वर शाह[२८७] हममें पाठ चौदह ख्यात नामा हो गये;
जिनके यहाँ सम्राट बंधक 'बादशाही' रख गये।
लगता हमारे नाम के पहले अतः पद शाह का;
सम्राट के पद 'बाद' के भी बाद लगता 'शाह' का ॥ २७० ॥

आनन्द-से[२८८], सद्दाल-से[२८९] अलकेश हममें हो गये;
महाशतक[२९०] चुल्लणीशतक[२९१] गोपाल गोपति हो गये।
जिनदत्त[२९२], धन्ना[२९३], शील[२९४], जगडूशाह[२९५] कैसे शाह थे ?
उपकारमय था द्रव्य जिनका, दीन की ये राह थे ॥ २७१ ॥

जब देखते हैं भूत-वैभव, निकल पडते प्राण हैं,
उस रिद्धि के यह सामने समृद्धि सब म्रियमाण हैं।
पाश्चात्य जन के अभिमतों पर हाय ! हम इठला रहे,
हम देश के त्रय भाग धन के स्वामि हैं कहला रहे ॥ २७२ ॥

थोथी प्रशंसा का कहो क्या अर्थ होना चाहिये ?
गिरते हुए को हाय ! कैसे 'धन्य' कहना चाहिये !
लक्षाधिपति उस काल में यों गण्य होते थे नहीं;
इन आज के कोटीश सम उस काल के थे दीन ही ॥ २७३ ॥

उपकरण स्वर्गिक ऐश का सब हाट में मौजूद था;
सामान सारा निर्धनों को मिल रहा बिन सूद था।
व्यापार सब विधि सत्यता की पीठ पर था चढ़ रहा;
धन लोभ हमको यो बधिर, अंधा नहीं था कर रहा ॥ २६४ ॥

रस, केश का, गजदन्त का व्यापार हम करते न थे;
व्यापार पशुओं का नहीं था, लाख मधु छूते न थे।
परिधान-पट का, हेम-मणि का कुल प्रमुख व्यापार था;
अथवा कलाकृत वस्तु का व्यापार सहविस्तार था ॥ २६५ ॥

था देश भारत स्वर्ण की विश्रुत तभी चिड़िया रहा,
यह देश द्रव्यागार था, यह देश रत्नों का रहा।
सम्पन्न जब यों देश को व्यापार से हमने किया,
संतुष्ट होकर देश ने श्रीमन्त-पद हमको दिया ॥ २६६ ॥

श्रीमन्त, शाह, शाहजी लक्ष्मीधरों के नाम हैं,
बनिया, महाजन, वैश्य भी धनवत के ही नाम हैं।
था त्यागमय धन, ऐश, था उपकारमय जीवन रहा;
भूपाल विश्रुत पद हमारा है यही बतला रहा ॥ २६७ ॥

व्यापार में वह धूम थी, होती समर में जो नहीं,
थी बढ़ रही दिन दिन कृषी, मिलती न भूमी थी कहीं।
थे व्योम जल-थल-यान आते हीर पन्नों से भरे;
थे लौटकर फिर जा रहे रस, अन्न वस्त्रों में भरे ॥ २६८ ॥

गणना हमारी मोहरो पर आज तक होती रही;
दश, पाँच, द्वादश, वीस कोटी ध्वज हमें कहती रही,
निर्धन हमारे सामने वर सार्वभौमिक भूप था;
वे दिन दिवस थे भाग्य के, यह दीन का नहिं रूप था ॥ २६९ ॥

वर शाह[२८७] हममें पाठ चौदह ख्यात नामा हो गये;
जिनके यहाँ सम्राट बंधक 'बादशाही' रख गये।
लगता हमारे नाम के पहले अतः पद शाह का,
सम्राट के पद 'वाद' के भी वाद लगता 'शाह' का ॥ २७० ॥

आनन्द-से[२८८], सद्दाल-से[२८९] अलकेश हममें हो गये;
महाशतक[२९०] चुल्लणीशतक[२९१] गोपाल गोपति हो गये।
जिनदत्त[२९२], धन्ना[२९३], शील[२९४], जगडूशाह[२९५] कैसे शाह थे?
उपकारमय था द्रव्य जिनका, दीन की ये राह थे ॥ २७१ ॥

जब देखते हैं भूत-वैभव, निकल पड़ते प्राण हैं,
उस रिद्धि के यह सामने समृद्धि सब म्रियमाण हैं।
पाश्चात्य जन के अभिमतो पर हाय! हम इठला रहे;
हम देश के त्रय भाग धन के स्वामि हैं कहला रहे ॥ २७२ ॥

थोथी प्रशंसा का कहो क्या अर्थ होना चाहिये?
गिरते हुए को हाय! कैसे 'धन्य' कहना चाहिये!
लक्षाधिपति उस काल में यों गण्य होते थे नहीं;
इन आज के कोटीश सम उस काल के थे दीन ही ॥ २७३ ॥

क्षत्री सभी थे देश-रक्षक, विप्र विद्या-ज्ञान के;
थे शूद्र सेवी देश के, थे वैश्य पोषक प्राण के।
पोषण-भरण यदि आज तक हम, देश का करते नहीं;
इस रूप में यह देश तुमको आज यों मिलता नहीं ॥ २७४ ॥

व्यापार-कला का प्रभाव

व्यापार से ही जन्म है इस गणित, ज्योतिष का हुआ,
व्यापार की सोपान पर साम्राज्य भी प्रोत्थित हुआ।
श्रुति वेद, आगम, शास्त्र का उद्भव इसी से है हुआ;
कौशल, कला, विज्ञान का व्यापार ही स्रष्टा हुआ ॥ २७५ ॥

वैश्य-कुल की साक्षरता

हाँ ! वैश्य कुल में आज भी अनपढ न मिल सकता कहीं,
तब सुखद काल सुवर्ण में संशय न रहता है कहीं।
व्यापार करना था हमारा कर्म सब है जानते,
फिर अज्ञ रहकर कर सके व्यापार क्या तुम मानते ? ॥२७६॥

यतिवर्य्य जिनको आज भी गुरुराज कहते हैं सभी—
वे ज्ञान हमको दे रहे आगम, निगम, जग के सभी।
हर ठौर गुरुकुल खुल रहे थे, छात्र उनमें पढ रहे;
दश-चार विद्या-विज्ञ हो वे लौट कर घर जा रहे ॥ २७७ ॥

वातावरण

हा ! उस समय का और ही कुछ और वातावरण था;
प्रिय पाठको ! सच मानिये वह काल-वर्ण सुवर्ण था।
कंचन-शिला पर बैठ कर मणिहार हम थे पो रहे,
भिक्षार्थ आये भिक्षु को फिर दान में वह दे रहे ॥ २७८ ॥

उस समय के स्त्री-पुरुष—

नर देव हैं, हैं नारियाँ मृतवर्ग मे सुर-देवियो,
नर-ज्ञान गरिमागार है, है नारियो गुण-राशियाँ ।
उपकार-प्राण पुरुष हैं, सेवापरायण नारियाँ,
सर्वत्र आनन्द क्षेम हैं, बस खिल रहीं फुलवारियाँ ॥ २७९ ॥

बाहर प्रमुख नर-देव हैं, भीतर प्रधाना नारियाँ,
है कर रहीं कैसी व्यवस्था लेख लो सुकुमारियाँ ।
उनमें कलह, शैथिल्य, आलस नाम को भी हैं नहीं,
जो भी मिलेंगे गुण मिलेंगे, दोष मिलने के नहीं ॥ २८० ॥

व्यापार में, व्यवसाय में, उद्योग में, राजत्व मे—
नर नारि दोनों है कुशल संसार के हर तत्त्व में ।
बल-बुद्धि-प्रतिभापुञ्ज हैं, सब ज्ञान के भण्डार है,
विज्ञान के, कौशल्य के, सौजन्य के आगार है ॥ २८१ ॥

हैं नारियें या देविये या कल-कला प्रत्यक्ष है,
सीना पिरोना जानती है, कार्य-कुशला दक्ष है ।
पति धर्म है पति मर्म है, पति एक उनका कर्म है,
वे स्फूर्ति की प्रतिमूर्ति हैं, उनके नयन में शर्म है ॥ २८२ ॥

ये देख लो वे सज रही है साज निज रण के लिये,
रुक जाय नर-संहार यह, वे जा रहीं इसके लिये ।
दुख है न कोई चीज उनको, ऐश क्या ? आराम क्या ?
अवशिष्ट रहते कार्य के उनको भला विश्राम क्या ? ॥ २८३ ॥

सन्तान

सन्तान सब गुणवान हैं, बलवान है, धीमान हैं;
माता पिता में भक्ति है, सब के प्रति सम्मान है।
माता पिता का पुत्र से, अतिशय सुता से प्रेम है;
संतान के कल्याण मे, माता-पिता का क्षेम है॥ २८४॥

जब देव सदृश हो पिता, देवी स्वरूपा मातृ हो;
सन्तान उत्तम क्यों न हो, ऐसे सगुण जब पितृ हो।
पति पत्नि के गुणपुञ्ज का सन्तान होती 'योग है;
ये गुण्य-गूणक राशियों का गुणनफल है, योग हैं॥ २८५॥

दाम्पत्य-जीवन—

सन्तान आज्ञापालिनी है, नारि आज्ञाकारिणी;
सब कार्य-प्राणाभृत्य है, समृद्धि है अनुसारिणी।
दाम्पत्य जीवन क्यों न हो फिर सौख्यकर उनका सदा,
निर्मल सरोवर पद्मयुत लगता न सुन्दर क्या सदा ? ॥२८६॥

कर्तव्याचरण—

हो कूकड़[२०९] का कूक इसके पूर्व ही सब जग गये,
जिनराज का करके स्मरण सब प्रति-क्रमण में लग गये।
आलोचना, पचखाण कर गुरुदेव-वंदन हो गये,
यों धर्म-कृत्यों से निपट गृह-कार्य-रत सब हो गये॥ २८७॥

स्वाध्याय[२१०], पूजन, दान, संयम, तप तथा गुर्वर्चना,
कर्तव्य हैं ये नित्य के अरु हैं अतिअभ्यर्थना।
ये देख कर बाधा विविध रुकते न चलती राह हैं,
तन-त्राण की, धन-नाश की करते न ये परवाह हैं॥ २८८॥

वदित्तु[२९८] से इनके उरों का सब पता लग जायगा;
व्यवसाय जप, तप, धर्म का सबका पता मिल जायगा।
निःराग हैं, निर्द्वेष हैं, निष्कलेश ये नर नारि हैं;
उपकारकर्ता मनुज के उपकृत सभी नर नारि हैं ॥ २८९ ॥

मन्दिरों का वैभव—

ये रव्युदय के पूर्व ही हैं देव-मन्दिर खुल गये,
ये ईश के दरबार में सरदार आकर जम गये।
आह्लादकारी घोष घण्टों का गगन में छा रहा,
हैं भक्तजन के कण्ठ से संगीत जीवन पा रहा ॥ २९० ॥

है मन्दिरों का ऐश-वैभव स्वर्गपुर से कम नहीं,
नर्त्तन कहां सुर-नर्तकी का, गान कण्ठो का कहां।
रवि चन्द्र का भी मान-मर्दन दीप माला कर रही,
है भक्तगण के कीर्तनो से गूंजती मण्डप-मही ॥ २९१ ॥

सम्राट सम्प्रति चैत्य-वन्दन कर रहे हैं लेख लो;
सामन्त पूजा कर रहे हैं भक्ति पूर्वक पेख लो।
चन्दन सुदर्शन[२९९] श्रेष्ठि सुत हैं शिर झुका कर कर रहे;
श्रावक, श्रमण सब वन्दना कर लौट कर हैं जा रहे ॥ २९२ ॥

इन मन्दिरो से प्राण अब तक धर्म हैं पाते रहे;
मस्जिद, मकबरे और गिर्जागृह यही बतला रहे।
पर आज के हा ! सभ्य जन इनको मिटाना चाहते,
ये बाँध ग्रीवा में उपल है डूब मरना चाहते ॥ २९३ ॥

गुरुकुल—

अब ब्रह्म-वेला आ गई, घण्टे चतुर्दिक बज रहे;
गुरु पर्ण-कुटि को जाग कर सब शिष्यगण हैं जा रहे।
गुरुदेव को हैं शिष्यगण गुरुदेव-वंदन कर रहे;
गुरु-शिष्य के उस काल में सम्बन्ध सुन्दर हैं रहे ॥ २९४ ॥

श्रुति-शास्त्र पढ़ते पाठकों के कलित कलरव हो रहे;
नक्षत्र, ग्रह, तारे तथा भूलोक शिक्षण हो रहे।
बैठे कहीं पर शाकटायन[300] शब्द व्याख्या कर रहे,
चौसठ कला दशचार विद्या शिष्य गुरु से पढ़ रहे ॥ २९५ ॥

एकान्त आये स्थान में अब शस्त्र-शिक्षण लेख लो,
ये पुष्पवत गुरुराज को लगते हुए शर पेख लो।
कुछ लक्ष्य-भेदन, शब्द-भेदन, रण परस्पर कर रहे;
रविदेव को ढकने किसी के कर कलावत चल रहे ॥ २९६ ॥

हे वाचको ! अब बाण ये सब एक पर चलने लगे;
जाकर उधर शर चक्र से कच-व्याल से कटने लगे।
गिरिराज का कोई गदा से चूर्ण-मर्दन कर रहा;
करतल लिये अगमखण्ड कोई चक्रवत घूमा रहा ॥ २९७ ॥

उपाश्रय—

ये मंच पर बैठे हुये उपदेश गुरुवर दे रहे;
इस लोक के, परलोक के ये मर्म सब समझा रहे।
सब सुर, असुर, देवेन्द्र हैं व्याख्यान में बैठे हुये;
परिषद् विसर्जित होगई जिनराज-जय कहते हुये ॥ २९८ ॥

अरिहंत का स्वागत—

सम्राट आगे हाथ जोड़े पाँव नङ्गे चल रहे,
चतुरंगिणी सज कर चमू सामंत पीछे आ रहे।
वाद्यंत्र के निर्घोष से है व्योम पूरित हो रहा;
जिन स्वागतोत्सव देव-तरुवर के तले है हो रहा ॥ २९९ ॥
त्रयगढ़[३०१] मनोहर की यहा है देव रचना कर रहे,
अरिहंत का सुर मणिजटित आसन यहाँ लगवा रहे।
आदेशना देने लगे विभु मञ्च पर अब बैठ कर,
तिर्यंच तक रस ले रहे हैं मातृ जिह्वा श्रवण कर ॥ ३०० ॥

भोजन वेला—

अब देवियाँ अपने गृहो मे पाक-व्यञ्जन कर रहीं,
आकर प्रतीक्षा द्वार पर कुछ साधु मुनि की कर रहीं।
यदि आगया मुनि ब्रह्मचारी भाग्य उनके जग गये,
सबको खिला कर खा रहीं, भोजन नवागत कर गये ॥ ३०१ ॥

हाटमाला—

देखो लगी यह हाटमाला स्वर्ण-सुन्दर लग रही;
भूषण उधर को, वस्त्र की इस ओर बिक्री हो रही।
ग्राहक जुड़े हैं हाट पर बिन भाव पूछे ले रहे;
सुर शाह जी के सत्य की देखो परीक्षा ले रहे ॥ ३०२ ॥

राज-प्रासाद—

ये चक्र-पाणी भूप के प्रासाद है तुम पेख लो,
आमात्यवर से कर रहे नृप मंत्रणा तुम लेख लो।
साम्राज्य में मेरे कहीं भी चोर, लम्पट हैं नहीं,
हो देश जिससे स्वर्गसम, करना मुझे मंत्री! वही ॥ ३०३ ॥

पारस्परिक व्यवहार—
राजा प्रजा में प्रेम है, सौहार्द है, अनुराग है,
द्विज, शूद्र चारों वर्ण में सब प्रेम का ही भाग है।
वैषम्य, कुत्सित द्वेष का तो नाम तक भी है नहीं,
अपवर्ग भारतवर्ष है, ऐसी न दूजी है मही ॥ ३०४ ॥

कार्य-विभाग—
आचार्य धर्माध्यक्ष हैं, क्षत्री सभी रणधीर हैं;
हैं विप्र शिक्षक वर यहाँ, अंत्यज कलाधर वीर हैं।
ये वैश्य सब व्यापार में, व्यवसाय में निष्णात हैं,
उद्योत आठों याम है, होती न तमभृत रात है ॥ ३०५ ॥

दानालय—
नंगे, निरन्नों को यहाँ हैं वस्त्र, भोजन मिल रहे,
कहते न उनको दीन हैं, आतिथ्य उनका कर रहे।
हो स्वर्ण-युग चाहे भले, पर रंक तो रहता सदा,
तम तोम का शुचि दिवसमें भी अंश तो मिलता सदा ॥३०६॥

गवालय—
आनन्द[302], चुल्लक[303], नन्दिनीप्रिय[304] के घरों को देखिये,
बहती वहाँ पयधार है, घृत की दुधारा लेखिये।
हा! आज गौ पर हो रहा हर ठौर खड्गाघात है,
घृत-दुग्ध देती हैं उसी पर हा! कुठाराघात है ॥ ३०७ ॥

विहंग-पश्वालय—
सब अश्व, गौ, गज, सिंह, मृग अज एक कुलमें रह रहे,
शुक, केकि, कोकिल, सारिका, पन्नग इसी में रह रहे।
आश्चर्य है, ये किस तरह सारंग पन्नग मिल रहे;
इनकी कला ये जानते, वर्णन वृथा हम कर रहे ॥ ३०८ ॥

चिकित्सालय—

निःशुल्क होती है चिकित्सा, शुल्क कुछ भी है नहीं;
देखो मनुज, पशु आदि सब की है चिकित्सा हो रही।
यति-कुल हमारा आज भी निःशुल्क औषध दे रहा;
वह भूत भारतवर्ष की कुछ कुछ झलक झलका रहा ॥ ३०९ ॥

ग्राम-नगर—

हैं ग्राम, पुर सारे सहोदर, प्रेममय व्यवहार है,
हर एक का दुख हो रहा सब के लिये दुख भार है।
सब के भरण-पोषण निमित ये कृषक करते काम हैं;
हैं अस्थियों तक घिस गईं, कुछ शेष तन पर चाम है ॥ ३१० ॥

सब वैश्य साहूकार है, वर वीर क्षत्री है सभी,
हैं ऊर्ध्वरेता विप्रगण, हैं शूद्र जन-सेवी सभी।
सब कर्म अपने कर रहे, नहि भेद हैं, नहि द्वेष है;
धर्मान्ध छूताछूत की दुर्गंध का नहि लेश है ॥ ३११ ॥

सब में परस्पर पाणि-पीड़न प्रेमपूर्वक हो रहे,
योग्या सुता वर योग्य को सर्वत्र सब है दे रहे।
योग्या सुता वर मूर्ख को होती न स्वीकृत आज है!
नहि विप्र का भी विप्र में सम्बन्ध होता आज है! ॥ ३१२ ॥

सब ग्राम-पुर धन-धान्य-भृत है, स्वास्थ्य-प्रद जलवायु है;
भूमी अधिक है उर्वरा, सब नारि नर दीर्घायु हैं।
इनमें न ऋण की रीति है, कहते किसे फिर सूद हैं;
उपकरण जीवन के सभी हर ग्राम में मौजूद है ॥ ३१३ ॥

औदार्य-चेता भूप हैं; दुष्काल भी पड़ते नहीं;
पष्ठांश कर से कर अधिक नहिं भूप लेते हैं कहीं।
कर भूप जितना ले रहे, सब व्यय प्रजा हित कर रहे;
अनिवार्य विद्या हो रही, गुरुकुल सभी थल चल रहे ॥ ३१४ ॥

देखो यहाँ होते नहीं यों घूँस के व्यापार हैं;
ग्रामीण जन पर आज-से होते न अत्याचार हैं।
नृप आप जाकर ग्राम में है पूछते, 'क्या हाल हैं'?
कैसा प्रजापति वह भला काटे न दुख तत्काल है ॥ ३१५ ॥

यों भ्रूण-हत्या, अपहरण देखो कहीं होते नहीं,
दुःशीलता की बात क्या! रतिचार तिल छूते नहीं।
हा! वृद्ध भारत! पुत्र तेरे जन्मते थे गुण भरे,
हा! हंत! अब तो प्रौढ भी हैं दीखते अवगुण भरे!! ॥ ३१६ ॥

तीर्थ-यात्रा—

अब अन्त में वर्णन तुम्हें हम तीर्थ-यात्रा का कहें;
फिर से सभी वातावरण संक्षेप में तुमको कहें।
धन-तेज-वैभव-भाव का सब कुछ पता मिल जायगा;
कुछ अंक में से होगया विस्मृत, नया हो जायगा ॥ ३१७ ॥

है तीर्थ-यात्रा चीज क्या? थी सब फिर क्या है अहो!
सामीप्य सम्मेलन अहो! ये घट गये कब से कहो?
क्या श्रमण श्रावक उस तरह से आज मिलते हैं नहीं?
क्यों प्रेम शान्ति, सुधर्म पर सुविचार अब होते नहीं? ॥ ३१८ ॥

श्री तीर्थ-यात्रा के लिये हर वर्ष जाते संघ थे,
होते शकट, गज, अश्व के अति भूरि संख्यक संघ थे।
आचार्य होते थे विनायक, संघपति भूपेन्द्र थे,
थे अंगरक्षक क्षत्रपति, जिनके निरीक्षक इन्द्र थे ॥ ३१९ ॥

ये पहुंच कर सब तीर्थ धर्माराधना करते वहां,
सब काटने अघ, कर्म-दल धर्माचरण करते वहाँ।
सबसे वहाँ पर पहुँच कर नृप क्षेम-शाता पूछते,
आचार्य के थे चरण नृप कौशेय लेकर पूँछते ॥ ३२० ॥

पश्चात इसके दान की, गृह-त्याग की सरिता चली;
वह दीन-गह्वर, उजड़ जीवन को सरस करती चली।
फिर देशना होती वहाँ गुरुराज की अमृत भरी,
यो तीर्थ शोभा देख कर होती नतानन सुरपुरी ॥ ३२१ ॥

थी देश, जाति, स्वधर्म पर तब मन्त्रणा होती वहाँ,
होते वहाँ प्रस्ताव थे, नियमावली बनती वहाँ।
अपराध थे जिनने किये, वे दण्ड खुद लेते सभी,
उपवास, प्रत्याख्यान, पौषध वे वहा करते सभी ॥ ३२२ ॥

स्थापित सभायें हो गईं जब, कार्य निश्चित हो गये;
अध्यक्ष, मन्त्री, कार्य-कर्ता, सभ्य घोषित हो गये;
जब देश, धर्म, समाज के हल प्रश्न सारे हो गये,
तब संघपति के कथन से प्रस्थान सब के हो गये ॥ ३२३ ॥

कैसा निकाला संघ था सम्राट संप्रति ने कहो;
शचि, इन्द्र जिनको देख कर थे रह गये स्तंभित अहो!
गज, अश्व, वाहन, शकट की गिनती वहाँ पर थी नहीं,
नर-नारि को गिनती भला फिर हो सके सम्भव कहाँ ?॥ ३२४ ॥

श्रीचन्द्र[305] गुप्त नृपेन्द्र ने, भूपेन्द्र कुमारपालने—
राजर्षि उदयन शांतनिक, दधिवाहना जग पालने—
सबने निकाले संघ थे, उल्लेख मिलते हैं अभी,
गिरनार सुदर्शन लेख लो, वह दे रहा वर्णन सभी ॥ ३२५ ॥

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर

प्रभु पार्श्व को इतिहास-वेत्ता सब तरह हैं जानते,
पशु-यज्ञ का कैसा किया प्रतिवाद, खण्डन जानते।
प्रभु पार्श्व का, विभु वीर का यदि जन्म जो होता नहीं[306],
फिर इस नृशंसाचार का क्या पार कुछ रहता कहीं ? ॥ ३२६ ॥

थे त्याग कर प्रासाद को दुख-शैल कंटकमय चले,
था चण्ड[307] कौशिक ने डसा विभु वीर को, क्या मुड़ चले ?
थे तीक्ष्ण कीलें कर्ण में विभु वीर के ठोंके गये[308];
इससे हुआ क्या ? वीर कायोत्सर्ग से क्या डिग गये ? ॥ ३२७ ॥

श्री वीर अर्कोदय हुआ, प्रातः हुआ तम छट गया,
पाखण्ड के मिथ्यावरण का जाल कुत्सित कट गया!
वे दुष्ट लम्पट छिप गये, गलबन्ध पशु के कट गये,
स्वच्छन्द स्वतन्त्र हो गये, फिर भाग्य जग के जग गये ॥ ३२८ ॥

महावीर का उपदेश—

अपवर्ग की संप्राप्ति में यह जाति वाधक है नहीं,
हो शूद्र चाहे राजवंशी, भेद इससे कुछ नहीं।
वाहर भले ही भेद हो, भीतर सभी जन एक है;
क्या शूद्र की, क्या विप्र की, आत्मा सभी की एक है ॥ ३२९ ॥

चाहे भले ही शूद्र हो, सद्भाव का यदि केत है,
वस चक्रपति से भी अधिक हमको वही अभिप्रेत है।
संमोह, माया, लोभ जिसने काम को जीता नहीं,
वह उच्च वर्णज हो भले, पर डोम से वह कम नहीं ॥ ३३० ॥

है सत्यव्रत जिसका नहीं, घट में नहीं जिसके दया,
शुचि शीलव्रत पाला नहीं, नहिं दान जीवन में दिया,
वह भूप हो या विप्र हो, हो श्रेष्ठिसुत चाहे भले,
वह मोक्ष पा सकता नहीं, उस ठौर किसका वश चले ॥ ३३१ ॥

महावीर द्वारा जैनधर्म का विस्तार और उसका स्थायी प्रभाव—

सर्वत्र आर्यावर्त में यों धर्म-ध्वज फहरा गई,
तलवार हिंसावाद की वस टूट कर दो हो गई।
सम्राट, राजा, माण्डलिक फिर जैन कहलाने लगे,
विस्तार हिंसावाद के सर्वत्र फिर रुकने लगे ॥ ३३२ ॥

अन्त्यज तथा द्विजगण सभी वीरानुयायी हो गये,
गणधर हमारे विप्र थे, वीरावलम्बी हो गये।
सम्प्रति नरप के काल तक कितने कहो जैनी हुये?
संक्षेप में हम यों कहें चालीस कोटी थे हुये ॥ ३३३ ॥

परिवार सह चेटक यदि जिन वीर की सेवा करे;
फिर आत्मजाएँ सप्त उनकी क्यों न जिनवर को वरें ?
उनकी यहाँ पर आत्मजाओं का न वर्णन हो सके;
यदि वर्ण अर्णव भर सके, यह वर्ण्य मुझ से हो सके ॥ ३३४ ॥

वह चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र जो इतिहास में विख्यात हैं,
यश-कीर्ति जिनकी आज भी संसार में प्रख्यात है।
जिसको अधूरे विज्ञजन थे बौद्ध-धर्मी कह रहे;
विद्वान अब नृप चन्द्र को सब जैन है बतला रहे ॥ ३३५ ॥

वीतभय[३०९] साकेतपुर[३१०] के कुछ भवन खण्डित शेष हैं,
गृद्ध राजगृह[३११] चम्पापुरी[३१२] में खण्ड विगलित शेष हैं।
उज्जैन[३१३], मिथिला[३१४], पटन[३१५] के शिल-पत्र तो तुम देख लो,
वर्णन हमारा दे रही श्रावस्ति[३१६], इसको लेख लो ॥ ३३६ ॥

गिरनार[३१७], शत्रुञ्जय[३१८] कहो ये तीर्थ कब से हैं बने,
सम्मेत[३१९] गिरिवर का कहो वर्णन कहाँ तुमसे बने ?
क्या ज्ञात हैं मक्खर सुदर्शन[३२०] ? नाम शायद ही सुना,
अर्थात यों जिन धर्म भारतवर्ष में व्यापक बना ॥ ३३७ ॥

पंजाब, उत्कल, मध्यभारत, मगध, कौशल, अङ्ग में,
सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, दक्षिणाशा बङ्ग में।
सारांश आर्यावर्त में, सब थल अनार्यावर्त में—
जिन धर्म प्रसारित हो चुका था कोण, आशा, वर्न में ॥ ३३८ ॥

आती हमें है: कुछ हँसी जब देखते इतिहास हैं,
उसमें हमारा कुछ कहीं मिलता न क्यों आभाष है।
ये आधुनिक इतिहासवेत्ता अज्ञ हों, सो हैं नहीं,
तब राग, मत्सर, द्वेष से वे कर रहे ऐसा कहीं ।। ३३९ ।।

जिनधर्म क्षत्री-धर्म था, संदेह इसमें है नहीं,
यदि विज्ञ हो तो लेख लो वह भूत भारत की मही।
फिर क्यों नपुंसक आज के है दोष हमको दे रहे?
अपनी नपुंसकता छिपाकर भीत हमको कह रहे ।। ३४० ।।

जैन धर्म का इतर धर्मों पर प्रभाव—

ऐसा न कोई धर्म है, जिसने न माना हो हमें;
वैदिक, सनातन, सांख्य ने जाना कभी से हैं हमें।
तुगलक[321]-मुगल[322]-सम्राट पर इसका असर कैसा हुआ?
गौराङ्ग[323] जन के हृदय पर कैसा असर शाश्वत हुआ? ।।३४१।।

पतन का इतिहास

सम्राट थे, हम भूप थे, सम्पन्न थे, अलकेश थे,
विद्या, कला, विज्ञान में हम पूर्ण थे, निःशेष थे।
नित पुष्प यानों पर चढ़े सर्वत्र हम थे घूमते;
सब राज लोकों के हमारे यान नभ थे चूमते ।। ३४२ ।।

पर काल-चक्र कुचक्र के सब वक्र होते काम हैं,
थे सभ्य हम सब भाँति, पर हम आज हा! बदनाम हैं।
किसको भला हम दोष दें, जब आप ही हम गिर गये,
बस नाश के कुरुक्षेत्र में डंके हमारे बज गये ।। ३४३ ।।

जब के गिरे ऐसे गिरे, संज्ञा न आई आज भी;
है कौन भाई, कौन रिपु, नहि दीखता हमको अभी।
स्वाधीन से आधीन हो, सब भाँति विपयालीन है,
बलहीन हैं, मतिहीन है, सब भाँति अब तो दीन है॥ ३४४॥

पयपूर्ण था, मयपद्म था, था भृंग मधुकर देश जो;
अब देश तो सूखा पड़ा है, पङ्क भी हो शेष जो।
चीरे करारी पड़ गईं, हर ठौर गह्वर हो गये,
क्या वेदना के प्राण इसमें हाय! स्तर-स्तर सो गये॥ ३४५॥

यह हो गई कब से दशा, हम जानते कुछ भी नहीं,
जो आ रहा मुँह में हमारे बक रहे हैं हम वही।
निर्भूप हो, उद्दाम हो द्विज-कुल हमारे गिर गये,
सब पुंश्चली स्त्री हो गईं, हा! नर नपुंसक हो गये॥ ३४६॥

ज्यों कायरों में नर-नपुंसक भग करते शान्ति हैं,
होती यथा निस्तब्ध निशि में उल्लुओं की क्रान्ति है।
पशु-यज्ञ के उपदेश त्यों थे द्विज सभी करने लगे,
जहाँ बह रही थी घृत-सरि, थे रक्त-नद झरने लगे॥ ३४७॥

निर्भर, नदी के कूल पर सर्वत्र होते होम थे,
हाँ, क्रूर सा करते हवन द्विज-भ्रष्ट-पापी-टोम थे।
यदि उस समय में वीर विभु का जन्म जो होता नहीं,
[illegible] होमाचार का कुछ पार भी रहता नहीं॥ ३४८॥

विभु वीर ने सबके उरों में फिर दया स्थापित करी,
उपसर्ग लाखों झेलकर पशु मूक की रक्षा करी।
पर शान्तिमय सुख राज्य कहिये छद्म कैसे सह सकें?
वे विप्र वंचित हाय! बोलो किस तरह चुप रह सकें? ॥ ३४९ ॥

तात्पर्य आखिर यह हुआ की धर्म-रण होने लगे,
लड़कर परस्पर जैन, वैदिक, बौद्ध हा! मरने लगे।
जब हो हताहत गिर पड़े, ये यवन पत्थर से पड़े,
क्या प्राण उसके बच सकें गिरते हुये पर गिरि गिरें? ॥ ३५० ॥

उस दुष्ट, पापी मनुज का जयचंद[३२४] कहते नाम है,
जिसके बुलाये यवन आये—घोर काला काम है।
जितने मनुज आये यहाँ, थे सब हमी में मिल गये,
इस्लाम-झंडे पर हमारे से अलग ही लग गये!! ॥ ३५१ ॥

इनकी हमारी फूट का हा! यह कुफल परिणाम है,
जो स्वर्ग-सा यह सौम्य भारत मिट रहा अविराम है।
जैसे परस्पर मेल हो करना हमें वह चाहिए,
सब भेद-भावों को भुला कर रस बढ़ाना चाहिए ॥ ३५२ ॥

हा! हाय! भारत! आज तेरे खण्ड कितने हो गये;
ये धर्म जितने दीखते, हा! अंग उतने हो गये।
प्रति धर्म के अन्दर अहो! फिर सैकड़ों फिरके बने,
फिर गोत्र, जाति, सुवर्ण के हा! चल पड़े विग्रह घने ॥ ३५३ ॥

ये श्वान-विग्रह नष्ट कर मत-भेद को हम हर सकें—
अब काल में सभव नहीं, यह काल शायद कर सकें ।
फिर आज की सरकार से मत-भेद पोषित हो रहे,
ये धर्म-रण हा ! बदल कर सब राजरण हैं हो रहे ॥ ३५४ ॥

अन्तरभेद व पतन—

मतभेद होता आदि से हर ठौर जग में आ रहा,
चढ़ने उतरने की कला सब है यही सिखला रहा ।
इसमें उतरने की कला हम जैनियों ने सीख ली,
पर हाय ! चढ़ने की कला नहिं दृष्टि भर भी लेख ली ॥ ३५५ ॥

जिन धर्म पहिले एक था, फिर खण्ड इसके दो हुये;
फिर वे दिगम्बर[325] श्वेत अंबर[326] नामसे मंडित हुये ।
चत्वार दल में फिर दिगंबर मत विभाजित हो गया,
यह श्वेत अम्बर भी अहो ! दो खण्ड होकर गिर गया ॥ ३५६ ॥

संतोष पर इतनी दशा मे काल क्यों करने लगा !
जो था क्षुधित चिरकाल से, अब क्यों क्षुधित रहने लगा !
बाईस[327] चौरासी[328] दलों में श्वेत अम्बर छट गया;
बाईस दल में पंथ तेरह[329] फिर अलग ही हो गया ॥ ३५७ ॥

तब विप्र, क्षत्री, शूद्र इसको छोड कर जाने लगे,
वे फिर इस पर उलट कर तब वार फिर करने लगे ।
जब है कलह निज देह में, अवयव भला क्यों खिल सकें,
निर्जल हुये अवनक में शुचि पद्म कैसे खिल सकें ? ३५८ ॥

लड्डू कलह में तुम बताओ आज तक किसको मिले,
पद-त्राण के अतिरिक्त भाई! और दूजे क्या मिले।
अपशब्द, निंदावाद तो हा! हंत! मण्डनवाद है,
जब तक न मूलोच्छेद हो, फिर क्या जिनेश्वरवाद है!! ॥ ३५९ ॥

हा! ये दिगम्बर श्वेत अम्बर श्वानवत है लड़ रहे,
पद-त्राण पावन स्थान में इनमे परस्पर चल रहे।
हा! नाथ! यह क्या हो गया! निशिकर अमाकर हो गया!
वृद्धत्व में अनुभव हमारा भार हमको हो गया!! ॥ ३६० ॥

बिगड़ा न कुछ भी है अभी, बिगड़ा यदि हम सोच लें,
ऐसे न निःसृत प्राण है जो एक पद दुर्भर चलें।
यदि अब दशा ऐसी रही, तब तो हमारा अन्त है,
हा! हंत! हा! हा! अन्त! हा! हा! हंत! हा! हा! अन्त है ॥३६१॥

जैन धर्म पर अत्याचार—

नृप[३३०] कल्कि के दुष्कृत्य[३३१] हम कुछ चाहते कहना नहीं,
कुछ पुष्यमित्र[३३२] महीप का व्यवहार भी कहना नहीं।
दुष्कृत्य इनके आज भी मुद्रित हृदय पर पायेंगे,
जिनको श्रवण करते हुये श्रुत आपके खुल जायेंगे ॥ ३६२ ॥

पहिने हुये पद-त्राण तक ये शीप पर थे जा चढ़े,
करने हमें ये देश बाहर के लिये आगे बढ़े।
हमको गिराया अग्नि में, हमको डुबाया धार मे,
न विचार था उस काल में, इस काल भी न विचार में ॥ ३६३ ॥

जितराग थे, जितद्वेष थे, क्यों क्रोध हमको हो भला;
कोई न हम में से कभी था रण-प्रथम करने चला।
अब खैर! सब कुछ हो गया, अब ध्यान आगे का करो,
जैसे बने फिर देश का उत्थान सब मिलकर करो॥ ३६४॥

वैदमत, बौद्धमत—

श्रुति वेद को जिनधर्म का ही बन्धु हम हैं मानते,
इच्छा तुम्हारी आपकी यदि भिन्न तुम हो जानते।
साहित्य के ये दीप हैं, शुचि प्रखरतर मार्तण्ड है,
आलोक इनका प्राप्त कर यह जग रहा ब्रह्माण्ड है॥ ३६५॥

होता नहीं अवतार यदि उस बुद्ध[333]-से भगवान् का,
क्या हाल होता आज फिर इस चीन का, जापान का।
ये हो गये अब मांसहारी, दोष पर इनका नहीं,
कैसे चलें वे शास्त्र पर सिद्धान्त जब समझे नहीं॥ ३६६॥

ये जैन, वैदिक, बौद्धमत मिलते परस्पर आप हैं;
मत एक की मत दूसरे पर अमिट गहरी छाप है।
हे बन्धुओ! ये मत सभी मत एक की सन्तान हैं;
ये युगजनित पाखण्ड हित को-दण्ड-सर-सधान हैं॥ ३६७॥

हमारे पर दोषारोपण—

मैं पूर्व हूँ बतला चुका, सब शौर्य-परिचय दे चुका;
था आत्म-बल कैसा हमारा, वह तुम्हें बतला चुका।
जब आत्म-बल से शत्रु को हम कर विजय पाते नहीं,
तब खड्ग के अतिरिक्त साधन दूसरा फिर था नहीं ॥ ३६९ ॥

जैसा हमारा धर्म था, वैसा हमारा आज है,
यह मानते लज्जित नहीं—वैसे नहीं हम आज हैं।
हम पूछते हैं आपसे, क्या आप वैसे हैं अभी?
फिर दोष सब हम पर धरो, आती तुम्हें नहि शर्म भी ॥३७०॥

इस बात को आगे बढा झगड़ा न करना है हमें,
विषकुम्भ घातक फूट का जड़-मूल खोना है हमें।
अब क्या, किसी का दोष हो, यह भ्रष्ट भारत हो चुका;
हम;आपनन का नाश हो यदि, स्वर्ग फिर भी हो चुका ॥३७१॥

वर्णाश्रम और वैश्य वर्ण—

हैं वर्ण चारों आज भी, निर्जीव चाहे हो सभी,
हा! वर्ण विकृत हो गये, सब वर्ण-शकर है अभी।
उन पूर्वजों ने वर्ण-रचना क्या मनोहर थी करी,
द्विज डोमियों ने आज उसको गरल से कटुतर करी ॥ ३७२ ॥

हतवीर्य क्षत्री हो भले, पर छत्रपति कहलायगा,
चाहे निरक्षर विप्र हो, पर पूज्य माना जायगा।
तस्कर भले हो प्रथम हम, पर शाह हम कहलायँगे,
दुष्कर्म कितने भी करो नहिं शूद्र द्विज कहलायँगे ॥ ३७३ ॥

पद योग्यता पर थे मिले, वंशानुगत अब हो गये,
उत्थान के यों द्वार सब हा! बंद सबके हो गये।
उन्मार्गगामी हो भले, द्विज तो पतित होता नहीं,
हो ऊर्ध्वरेता, धर्म-चेता शूद्र, द्विज होता नहीं ॥ ३७४ ॥

हे वैश्य-वर्णज बन्धुओ! निज वर्ण पहिले देख ले,
ये गोत्र इतने वर्ण में आये कहाँ से पेख ले।
जब वैश्य कुल में गोत्र को हम सोचने लगते कभी,
मिलते वहाँ पर गोत्र सब द्विज, शूद्र, क्षत्री के तभी ॥ ३७५ ॥

थीं कर्म से सब जातियें, ये गोत्र हैं बतला रहे,
इतिहास, धार्मिक ग्रंथ भी सब पुष्टि इसकी कर रहे।
कारण कहो फिर कौन सा जो ये पटावृत हो गये,
ताला लगाकर द्वार पर द्विज चोर भीतर सो गये! ॥३७६॥

सब दृष्टि से द्विज भ्रष्ट हैं, पर उच्च थल नहिं छोड़ते,
जो दीखता चढ़ता नया, पत्थर उसे द्विज मारते।
द्विज स्वत्वता, आर्यता के शृङ्ग पर हैं चढ़ चुके,
वे पहुँच कर इन शृङ्ग पर अधिकार पूरा कर चुके ॥ ३७७ ॥

किस भाँति छूताछूत को इस भाँति से वे मानते,
नर-जाति के प्रति मनुज को जब थे सहोदर जानते ।
अज आत्म-सरवर की अहो ! सब वे मनोहर मीन थे;
उनमें परस्पर प्रेम था, आध्यात्म-शिखरासीन थे ।। ३७९ ।।

इन वर्ण, आश्रम, वेद की किसने कहो रचना करी;
कितनी मनोहर भाँति से लेखो समस्या हल करी ।
इस कार्य को श्री नाभि-सुत [334] ने था प्रथम जग में किया;
वह था प्रथम, अब अंत है, क्या अन्त कर खोटा किया ?।।३८०।।

यवन-शासक—

राजत्व यवनों का कहे कैसा रहा इस देश में,
ऐसा कि जैसा पोप का यूरोप के था देश में ।
था दोष किसका, था अशुभ फल यह हमारे कर्म का,
क्या भोगना पड़ता नहीं दुष्फल किये दुष्कर्म का ।। ३८१ ।।

राजत्वभर ये यवनपति हा ! प्राण के ग्राहक रहे;
ये गौ, बहू, सुत, बेटियों का थे हरण करते रहे ।
तलवार के बल हिन्दु थे इस्लाम में लाये गये;
आये न जो इस्लाम में बेमौत वे मारे गये ।। ३८२ ।।

धन द्रव्य पर उनके लगे रहते सदा ही दांत थे,
बिछड़े हुओं के रात के मिलते न शव हा ! प्रात थे ।
हा ! दूधपीते शिशु गणों का वह रुदन देखा न था,
नरभूप था, यमभूप था, हमने उसे लेखा न था ।। ३८३ ।।

हैं कोर्ट मुनसिफ खुल रहे, होता जहाँ पर न्याय है,
तुम लार्ड-परिषद्[३३७] तक बढ़ो, यदि हो गया अन्याय है।
इस लार्ड-परिषद्-कोर्ट का हम लाभ कितना ले चुके !
सम्मेत[३३८]-शेखर के लिये हम हैं यहाँ तक बढ़ चुके ।। ३८९ ।।

है पास में पैसा अगर, सब काम कल कर जायगी,
थोड़े दबाने पर बटन के रोशनी लग जायगी।
खबरें नये जग की हमें इसकी कृपा से मिल रहीं;
अब इस बटन के सामने कुछ देव-माया भी नहीं ।। ३९० ।।

इनके कलायें पास में हैं सुर, असुर, अमरेश की,
हम देखते हैं नेत्र से कितनी दया है ईश की !
मृत को जिलाना हाथ में इनके अभी आया नहीं,
अतिरिक्त इसके और कोई काम बाकी है नहीं ।। ३९१ ।।

यह रेल, वायर की कहो है जाल कैसी बिछ रही !
ये अम्बु-थल-नभयान की चालें मनोहर लग रहीं।
संचार का, व्यापार का श्री राम के भी राज्य में—
साधन नहीं था इस तरह जैसा मिला इस राज्य में ।। ३९२ ।।

हैं भूरि संख्यक स्कूल सारे देश भर में खुल रहे,
निज स्वामियों के प्रति हमें सद्भाव हैं सिखला रहे।
यह भूत छूताछूत का कितना भयंकर यक्ष है;
हम तो पराभव पा चुके, अब भागता प्रत्यक्ष है ।। ३९३ ।।

कानन परिषद में हमारे शद अब जाने लगे,
फिर भी न जाने क्यों नहीं अच्छे बृटिश लगने लगे।
सुविधा हमें सब भांति से सब जाति की ये दे रहे
हम मांगते निज राज्य हैं, क्या राज्य मुँह में मिल रहे ? ३६४ ॥

शासन हमें इन नरवरों का आज क्यों भाता नहीं,
दुर्भाव हममें हो भले दुर्भाव इनमें तो नहीं।
यदि हैं हमारे कष्ट तो [illegible] हम कह दें यहाँ,
[illegible] नामा भूले यहाँ ॥ ३६५ ॥

विद्या न वैसी मिल रही, जैसी हमें अव चाहिए,
अज्ञानतम रहते हुये कैसे वढे वतलाइये ?
कौशल-कला व्यापार में हम ठेट से निष्णात थे;
हम घट गये, वे वढ़ गये, जो ठेट से वदजात थे ! ॥ ३९९ ॥

सरकार का उपकार फिर भी वहुत कुछ देखो हुआ;
इनकी कृपा से आज इतना देखने को तो हुआ।
परतन्त्र के ये कोट जिस दिन देश से उड़ जायँगे;
शुभ दिन हमारे देश के फिर उस दिवस जग जायँगे ॥ ४०० ॥

हम आज—

वैसे न दिन अव हाय ! है, वैसी न रातें हैं यहाँ,
अव हाय ! वैसे नर नहीं, वैसी न नारी हैं यहाँ।
हा ! स्वर्ग-सा वह भूत भारत भूत सदृश रह गया !
कण मात्र भी अव उस छटा का शेप है नहि रह गया ! ॥४०१॥

है वायु भी वहती वही, आनंदप्रद वैसी नहीं,
ऋतुराज, पावस, ग्रीष्म की भी वात है वैसी नहीं।
वदली हुई हमको हमारी मातृ-भूमी दीखती,
हा ! पूर्व-सी वैसी कृषी उसमें न होती दीखती ! ॥ ४०२ ॥

अघचार, पापाचार, हिंसाचार, मिथ्याचार है;
रसचार हैं, रतिचार है, सव के वुरे व्यवहार है !
हम दीन हैं, मति हीन हैं, नहिं मदन पर कोपीन है;
दासत्वता में, भृत्यता मे नाथ ! अव लवलीन हैं !! ॥ ४०३ ॥

कानून-परिषद में हमारे शूद्र अब जाने लगे,
फिर भी न जाने क्यों नहीं अच्छे बृटिश लगने लगे।
सुविधा हमें सब भाँति से सब जाति की ये दे रहे,
हम माँगते निज राज्य है, क्या राज्य मुँह से मिल रहे ? ३६४ ॥

शासन हमें इन नरवरों का आज क्यों भाता नहीं;
दुष्भाव हममें हो भले, दुष्भाव इनमें तो नहीं।
यदि है हमारे कुछ जलन उर में, उसे कह दें यहाँ,
ये स्वामि हैं, हम दास हैं, सब है क्षमा भूले यहाँ ॥ ३६५ ॥

सबसे प्रथम यह प्रार्थना तुम देश के होकर रहो,
इस दीन भारतवर्ष के तुम पुत्र बन कर के रहो।
हरके उदासीन बन यहाँ अन्यत्र यों फको नहीं,
धन द्रव्य भारतवर्ष का अन्यत्र जाने दो नहीं ॥ ३६६ ॥

विद्या न वैसी मिल रही, जैसी हमें अब चाहिए,
अज्ञानतम रहते हुये कैसे बढे बतलाइये ?
कौशल-कला व्यापार में हम ठेट से निष्णात थे;
हम घट गये, वे बढ गये, जो ठेट से बदजात थे ! ॥ ३९९ ॥

सरकार का उपकार फिर भी बहुत कुछ देखो हुआ,
इनकी कृपा से आज इतना देखने को तो हुआ।
परतन्त्र्य के ये कोट जिस दिन देश से उड़ जायँगे;
शुभ दिन हमारे देश के फिर उस दिवस जग जायँगे ॥ ४०० ॥

हम आज—
वैसे न दिन अब हाय ! है, वैसी न राते है यहाँ;
अब हाय ! वैसे नर नहीं, वैसी न नारी हैं यहाँ।
हा ! स्वर्ग-सा वह भूत भारत भूत सदृश रह गया !
कण मात्र भी अब उस छटा का शेष है नहि रह गया ! ॥४०१॥

है वायु भी बहती वही, आनदप्रद वैसी नहीं;
ऋतुराज, पावस, ग्रीष्म की भी बात है वैसी नहीं।
बदली हुई हमको हमारी मातृ-भूमी दीखती;
हा ! पूर्व-सी वैसी कृपी उसमें न होती दीखती ! ॥ ४०२ ॥

अघचार, पापाचार, हिंसाचार, मिथ्याचार है,
रसचार हैं, रतिचार है, सब के बुरे व्यवहार है !
हम दीन हैं, मति हीन है, नहि मदन पर कोपीन हैं;
दासत्वता में, भृत्यता मे नाथ ! अब लवलीन हैं !! ॥ ४०३ ॥

वर्तमान खण्ड

गाती रही तू भूत अब तक लेखनी उत्साह भर,
रोया न तुझसे जायगा अब आज का दिन दाहकर!
निःशक्त है, निःचेष्ट है, नहि नाड़ियों में रक्त है;
अब श्वास भी रुकने लगी, अंतिम हमारा वक्त है !!! ॥ १ ॥

क्या प्रभो ! हमको कहाने का मनुज अधिकार है?
हा हा हमें हुत्कार है ! धिक् ! धिक् ! हमें धिक्कार है !
कटुतर लगेंगे आपको ये वाक्य हूँ जो कह रहा,
पर क्या करूँ? लाचार हूँ, मेरा हृदय नहिं सह रहा ॥ २ ॥

दयनीय हा ! इस दुर्दशा का हे विभु ! कहाँ छोर है?
इस ओर भी हम हैं नहीं, नहि नाथ ! दूजी ओर हैं।
हममें विदेशी दुष्ट हैं, हममें बड़ा अनाचार है,
हैं हीन [illegible] सह रहे, जिसका न कुछ उपचार है ॥ ३ ॥

गुर्जर व मालव देश के हम शाह थे, सरदार थे,
सौराष्ट्र, राजस्थान के आमात्य थे, भूदार थे।
ऐसा पतन तो शत्रु का भी नाथ! हा! करना नहीं,
इससे भली तो मृत्यु है, जिसमे न है लज्जा कहीं ॥ ५ ॥

श्रीमंत होने मात्र से क्या अवपतन रुकता कहीं,
हैं किस नशे मे झूमते, हमसे न कम गणिका कहीं।
कितनी हमारे पास में दौलत जमा है देख लूँ;
किस श्रेणि के फिर योग्य हैं हम, श्रेणि वह भी लेख लूँ ॥ ६ ॥

हम शाह हैं या चोर हैं, हम है मनुज या है दनुज;
हम नारि है या हैं पुरुष! अत्यंज तथा या हैं अनुज।
हिंसक तथा या जैन हैं, या नारि-नर भी हैं नहीं,
क्यो की हमारे कार्य तो नर-नारि सम खलु है नहीं ॥ ७ ॥

अविद्या

क्यों सूत्र ढीले पड़ गये? क्यों अवगुणो से ढक गये?
क्यों मन-वचन-अरविंद पर पाले शिशिर के पड़ गये?
निज जाति, धन, जन, धर्मका क्यो ह्रास दिन-दिन हो रहा?-
हम चेतते फिर क्यो नहीं? क्या रोग विभुवर! हो रहा? ॥ ८ ॥

हममें विषय का जोर क्यो? हममे बढ़ा अतिचार क्यो?
उन्मूल हमको कर रहा यह अन्ध श्रद्धाचार क्यो?
घातक प्रथाये, रीतियों के घोर हम है अङ्क क्यो?
हम आप अपने ही लिये उत्कीर्ण रखते खङ्ग क्यो? ॥ ९ ॥

अतिव्यय हमारे में अधिक क्यों आय से भी बढ़ रहे ?
अनमेल-अनुचित-शिशु-प्रणय हममें अधिक क्यों घट रहे ?
हममें सुशिक्षा की व्यवस्था नाम को भी क्यों नहीं ?
क्यों सो रहे युग-नींद हम ? हम जागते हैं क्यों नहीं ? ॥१०॥

क्यों आज 'अज' को 'मेर' को मर 'रोज' को रज लिख रहे !
'चत्वार पट' लिखना जहाँ चौपट वहाँ क्यों लिख रहे ?
'सुत' को सुता क्यों लिख रहे ? क्यों बन रहे नादान हैं ?
इस जग-अजायब गेह में हम क्यों अजब हतज्ञान हैं ? ॥११॥

इस अवदशा का बन्धुओ ! क्या हेतु होना चाहिए ?
क्या द्वेष, मत्सर, राग को जड़ हेतु-कहना चाहिए ?
इनका जहाँ पर जन्म है—जड़-हेतु है सच्चा वही;
इनकी अविद्या मातृ है, जड़-हेतु अवनति का वही ॥१२॥

आर्थिक स्थिति

एकाक्ष का अन्धे जनों में मान बढ़ना है यथा,
कंगाल-भारतवर्ष में श्रीमंत जन हम हैं तथा।
कुछ मोह कर थोथा सखे ! हम पूर्व-वैभव देख लें,
फिर दीन हैं, श्रीमन्त या जलकण घटाकर लेख लें ॥१३॥

हम पाँच प्रतिशत भी नहीं श्रीमंत-पद के योग्य हैं;
चालीस प्रतिशत भी कहीं हम पेट भरने योग्य हैं।
पैंतीश प्रतिशत आत्मजा को बेच कर हैं जी रहे,
अवशिष्ट रहते बीस विष मारे क्षुधा के पी रहे॥ १५॥

अपव्यय

हा! जाति निर्धन हो चुकी,—क्या ध्यान हमको है भला?
देता न वह भी ध्यान जिसके आगई घर है बला!
निज जाति का, निज धर्म का, निज का 'न' जिसको ध्यान है,
नर-रूप में, हम सच कहें, वह फिर रहा बन श्वान है॥ १६॥

हो पाणि-पीड़न के समय व्यय लक्ष कुछ चिंता नहीं,
आतिश, कलाबाजी न हो— आनन्द कुछ आता नहीं,
'रतिजान' के तनहार बिन जी की कली खिलती नहीं,
बिन भोज भारी के दिये यश-कीर्ति बढ़ सकती नहीं॥ १७॥

धन नाम को भी हो नहीं, नहिं शान में होगी कमी,
कौलिण्यता अब वंश की व्यय व्यर्थ मे आ ही थमी।
करके मृतक-भोजन हजारों बाल-विधवा रो रहीं,
घर दीन कितने हो गये, पर बढ क्रिया यह तो रहीं॥ १८॥

मेले, महोत्सव, तीर्थ-यात्रा अरु प्रतिष्ठा कार्य में;
उपधानतप, दीक्षादि में शोभा-विवर्धक कार्य मे—
हतज्ञान हो हम आय से व्यय बहु गुणित है कर रहे;
सत्कर्म को दुष्कर्म कर हम आप निर्धन बन रहे॥ १९॥

अतिव्यय हमारे में अधिक क्यों आय से भी बढ़ रहे ?
अनमेल-अनुचित-शिशु-प्रणय हममें अधिक क्यों घट रहे ?
हममें सुशिक्षा की व्यवस्था नाम को भी क्यों नहीं ?
क्यों सो रहे युग-नींद हम ? हम जागते हैं क्यों नहीं ? ॥ १० ॥

क्यों आज 'अज' को 'मेर' को मर 'रोज' को रज लिख रहे ?
'चत्वार पट' लिखना जहाँ चौपट वहाँ क्यों लिख रहे ?
'सुत' को सुता क्यों लिख रहे ? क्यों बन रहे नादान हैं ?
इस जग-अजायब गेह में हम क्यों अजब हतज्ञान हैं ? ॥ ११ ॥

इस अवदशा का बन्धुओ ! क्या हेतु होना चाहिए ?
क्या द्वेष, मत्सर, राग को जड़-हेतु कहना चाहिए ?
इनका जहाँ पर जन्म है—जड़-हेतु है सच्चा वही,
इनकी अविद्या मातृ है, जड़-हेतु अवनति का वही ॥ १२ ॥

आर्थिक स्थिति

हम पाँच प्रतिशत भी नहीं श्रीमंत-पद के योग्य है,
चालीस प्रतिशत भी कहीं हम पेट भरने योग्य है।
पैंतीश प्रतिशत आत्मजा को वेच कर हैं जी रहे;
अवशिष्ट रहते बीस विष मारे क्षुधा के पी रहे॥ १५॥

अपव्यय

हा! जाति निर्धन हो चुकी,—क्या ध्यान हमको है भला?
देता न वह भी ध्यान जिसके आगई घर है बला!
निज जाति का, निज धर्म का, निज का 'न' जिसको ध्यान है,
नर-रूप में, हम सच कहे, वह फिर रहा वन श्वान है॥ १६॥

हो पाणि-पीड़न के समय व्यय लक्ष कुछ चिंता नहीं,
आतिश, कलाबाजी न हो— आनन्द कुछ आता नहीं,
'रतिजान' के तनहार बिन जी की कली खिलती नहीं,
बिन भोज भारी के दिये यश-कीर्त्ति बढ़ सकती नहीं॥ १७॥

धन नाम को भी हो नहीं, नहि शान में होगी कमी,
कौलिण्यता अब वंश की व्यय व्यर्थ मे आ ही थमी।
करके मृतक-भोजन हजारों बाल-विधवा रो रहीं;
घर दीन कितने हो गये, पर बढ क्रिया यह तो रही॥ १८॥

मेले, महोत्सव, तीर्थ-यात्रा अरु प्रतिष्ठा कार्य में,
उपधानतप, दीक्षादि में शोभा-विवर्धक कार्य मे—
हतज्ञान हो हम आय से व्यय बहु गुणित है कर रहे,
सत्कर्म को दुष्कर्म कर हम आप निर्धन बन रहे॥ १९॥

इन मंदिरों के आय-व्यय को आँक हम सकते नहीं,
क्या तीर्थ-धन खाकर धनी हैं बन गये गुण्डे नहीं ।
मन्दिर पुराने सैकड़ों पूजन बिना हैं सड़ रहे,
हम घटरहे हर वर्ष हैं, पर चैत्यगृह नव बढ़ रहे ॥ २० ।

अब धर्म के भी कार्य में प्रतियोगितायें चल रहीं,
बढ़कर हमारे हो महोत्सव—योजनायें बन रहीं ।
हा ! जाति निर्धन हो चुकी, व्यापार चौपट हो चुका,
पर धर्म भी प्रतियोगिता में भ्रष्ट मारा हो चुका ॥ २१ ॥

हम मूर्ख हैं अनपढ़, तथा, नहिं सोच भी हम कुछ सकें,
फिर व्यर्थ व्यय, अपयोग को हम समझ भी क्या कुछ सकें ?
हम श्रेष्ठि, शाहूकार हैं—धन क्यों न पानी-सा बहे,
वे राम पूर्वज मर गये ! मणि कपि-करों में क्यों रहे ? ॥ २२ ॥

अपयोग

वेश-भूषा

निज वेश-भूषा छोड़ना यह देश का अपमान है;
क्या दूसरों की नकल में ही रह गया सम्मान है।
जो जाति खलु ऐसा करे, वह जाति जीवित ही नहीं,
यदि चढ़ गया रंग लाल तो फिर श्वेतपन है ही नहीं ।।२५।।

इस वृद्ध भारतवर्ष का यह वृद्ध भूषा-वेश है;
चारित्र-दर्शन-ज्ञान का यह पूत ! पार्थिव वेश है।
हम दूसरों की कर नकल अब सिद्ध ऐसा कर रहे—
जन्मे नहीं हम पूर्व थे, हम जन्म अब हैं धर रहे ।। २६ ।।

जलवायु, कर्माचार के अनुसार होता भेष है,
प्रतिकूल जिनके वेश है, खलु पतित वे ही देश हैं।
इस वेश-भूषा मे निहित नव रस तुम्हें मिल जायँगे,
साहित्य-कौशल-कर्म का हमको जनक बतलायँगे ।। २७ ।।

"जब तक न भाषा-भेष का अभिरूप बदला जायगा,
तब तक न भारत में हमारा राज्य जमने पायगा।"
ये वाक्य किसको याद हैं ? किसने कहो, कब थे कहे ?
मतव्य के अनुसार अब तक कार्य वे करते रहे ! ।। २८ ।।

हम छोड़ करके वेश-भूषा देश लज्जित कर रहे,
अपमान कर हम पूर्वजों का स्याह मुख निज कर रहे !
पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर अगर देखें हमें;
मैं सत्य कहता हूँ सखे ! पहिचान नहिं सकते हमें ।। २९ ।।

नर नारि हैं या नारि नर—यह वेश कहता भी नहीं;
'नर-वेश' नर का भी नहीं, 'रति-वेश' रति का भी नहीं।
नर वेश भी जब है नहीं, नहि नारियों का वेश है;
यह कौन-सा फिर देश है, यह तो न भारत देश है !! ॥ ३० ॥

खान-पान

हे भाइयो ! हम जैन हैं, यह मान जन सकते नहीं;
ऐसे कभी भी जैन के तो कार्य हो सकते नहीं।
आमिष-विनिर्मित नित्य हम भोजन विदेशी खा रहे;
बदनाम कर यों धर्म को हम जैन हैं कहला रहे ॥ ३१ ॥

'व्हिसकी' 'ब्रान्डी' 'पोर्ट-व्हाइन' हमें रुचिकर लगें;
जापान-जर्मन-चीन के बिस्कुट हमें मधुकर लगें।
हममें व मांसाहारियों में भेद अब क्या रह गया?
जब खान पान में अहो! जैनत्व मारा रह गया ॥ ३२ ॥

फैशन

परिधान करने के लिये मलमल विदेशी चाहिए !
हा ! चमक लाने के लिये मुँह पर—लवण्डर चाहिए !
हर वक्त मुँह को पूँछने करचीफ कर मे चाहिए !
जलता हुआ सिगरेट तो कर में सदा ही चाहिए !! ॥ ३५ ॥

जेवी घड़ी है जेव मे, है रिष्ट वाहे हाथ में;
है नाक पर ऐनक लगी, है कैप दाहे हाथ मे ।
ये छोर धोती का उठाये है किधर को जा रहे;
हा ! हत ! ये भी वैश्य हैं—वैश्या भवन को जा रहे !! ॥ ३६ ॥

हो पान की लाली टपकती, इत्र-भीना कान हो,
हों वस्त्र सारे मलमली, रसराज की-सी शान हो ।
दो यार मिलकर साथ में ये झूमते हैं जा रहे,
उन्मत्त होकर वहिन के कर को दवाते जा रहे !! ॥ ३७ ॥

इस हाय ! फैशन ने हमारा नष्ट जीवन कर दिया,
इसने हथोड़े मार कर हा ! हेम कण कण कर दिया ।
इस भूत-फैशन के लिये हड्डमान जगना चाहिए,
या भूतसे ही भूत अब हमको भिडाना चाहिये ॥ ३८ ॥

अनुचित प्रणय

वालायु में करना प्रणय सतान का—अभिशाप है;
ऐसे—पिता माता नहीं, वे पुत्र के शिर पाप हैं ।
अल्पायु में ये कर प्रणय संतान निर्वल कर रहे,
देकर निमंत्रण काल को ये भेट सन्तति कर रहे ! ॥ ३९ ॥

नर नारि है या नारि नर—यह वेश कहता भी नहीं;
'नर-वेश' नर का भी नहीं, 'रति-वेश' रति का भी नहीं।
नर वेश भी जब है नहीं, नहिं नारियों का वेश है;
यह कौन-सा फिर देश है, यह तो न भारत देश है !! ॥ ३० ॥

खान-पान

हे भाइयों! हम जैन है, यह मान जन सकते नहीं,
ऐसे कभी भी जैन के तो कार्य हो सकते नहीं।
आमिष-विनिर्मित नित्य हम भोजन विदेशी खा रहे;
बदनाम कर यों धर्म को हम जैन है कहला रहे ॥ ३१ ॥

'विस्की' 'बरान्डी' 'वारले-व्हाइन' हमें रुचिकर लगें,
जापान-जर्मन-चीन के बिस्कुट हमें मधुकर लगें।
हममें व मांसाहारियों में भेद अब क्या रह गया?
जब खान पाने में अहो! जैनत्व सारा बह गया ॥ ३२ ॥

फैशन

ये युवक हैं या युवतियें—पहिचान में आता नहीं,
पहिने हुये ये पेन्ट हैं, साया तथा पत्ता नहीं।
सिर पर चमकती मांग है, नहिं मूछ मुंह पर हैं कहीं,
नाटक-सिनेमा की कहीं ये नायिकायें है नहीं? ॥ ३३ ॥

परिधान करने के लिये मलमल विदेशी चाहिए!
हा! चमक लाने के लिये मुँह पर—लवण्डर चाहिए!
हर वक्त मुँह को पूँछने कर्चीफ कर ने चाहिए!
जलता हुआ सिगरेट तो कर में सदा ही चाहिए!! ॥ ३५ ॥

जेबी घड़ी है जेब में, है रिष्ट वाहें हाथ में;
है नाक पर ऐनक लगी, है कैप दाहे हाथ में।
ये छोर धोती का उठाये हैं किधर को जा रहे;
हा! हंत! ये भी वैश्य हैं—वैश्या भवन को जा रहे!! ॥ ३६ ॥

हो पान की लाली टपकती, इत्र-भीना कान हो;
हों वस्त्र सारे मलमली, रसराज की-सी शान हो।
दो यार मिलकर साथ में ये झूमते हैं जा रहे;
उन्मत्त होकर वहिन के कर को दबाते जा रहे!! ॥ ३७ ॥

इस हाय! फैशन ने हमारा नष्ट जीवन कर दिया;
इसने हथोड़े मार कर हा! हेम कण-कण कर दिया।
इस भूत-फैशन के लिये हनुमान जगना चाहिए;
या भूतसे ही भूत अब हमको भिड़ाना चाहिये ॥ ३८ ॥

अनुचित प्रणय

वालायु में करना प्रणय संतान का—अभिशाप है;
ऐसे—पिता माता नहीं, वे पुत्र के शिर पाप है।
अल्पायु में ये कर प्रणय संतान निर्बल कर रहे;
देकर निमन्त्रण काल को ये भेट सन्तति कर रहे! ॥ ३९ ॥

ये जाति के अभिशाप हैं, निर्मूल उसको कर रहे;
संतान भावी को हमारी दीन दुखिया कर रहे।
यदि हाल जो ऐसा रहा—हम एक दिन मिट जायँगे,
इन पापियों के पाप का फल हाय! कटु हम खायँगे॥ ४० ॥

है रोग इतना ही नहीं, दूजे कई हैं लग रहे;
अनमेल वय में, वृद्ध वय में पाणि-पीड़न बढ़ रहे!
बहु पाणि-पीड़न की प्रथा भी आज हममें दीखती!
हम क्या कहें, अंतिम समय की काल-घड़ियाँ चीखतीं!! ॥ ४१ ॥

ये बाल विधवायें हजारों दे रहीं कटु शाप हैं;
बालक विधुर हो फिर रहे—हम देखते नित आप हैं!
[illegible] के दुष्काम ने हा! धन हमारा हर लिया,
हा! युवक दल के रत्न को कामी कुकुर ने हर लिया!! ॥ ४२ ॥

जिस जाति का यह हाल हो, उसका भला सम्भव नहीं;
यदि शीघ्र ही आ जाय उसका काल कुछ, अचरज नहीं।
हे युवक! तुम आँख खोलो ध्यान कुछ तो अब करो,
[illegible] बल या युक्ति से इन कुकुरों को वश करो॥ ४३ ॥

फैले हुये अघचार के ये दुष्ट जिम्मेदार हैं;
ये हैं शिकारी जाति के—इनके बुरे व्यापार है।
आज्ञानुवर्ती आदि से हम आज तक इनके रहे;
कहना पड़ेगा आज जब आदर्शता तज ये रहे ॥ ४५ ॥

श्रीमन्त

श्रीमन्त हो फिर क्या कमी—पैसा न क्या रे! कर सके;
तुम जीव-हिंसा भी करो, पर कौन तुमको कह सके।
कुछ एक को तो आप में भी है प्रिया मृगया-प्रिया,
कुल्टा तुम्हारी हो गई चिरसंगिनी जीवन-प्रिया!! ॥ ४५ ॥

श्रीमन्त हो, रसराज हो, कामी तथा बेभान हो,
अवकाश भी तुमको कहाँ! जो जाति का भी ध्यान हो।
इस आज की हा! दुर्दशा के मूल कारण हो तुम्हीं,
तुम रोग हो, गुण चोर हो, अरु प्राण-हर्ता हो तुम्हीं!! ॥ ४७ ॥

देव-धन खाते हुये तुमको न आती लाज है,
तुम मनुज को भी खा सको यह कौन-सा दुष्काज है!
अनैच्छिक कन्या-हरण तुम हो! कर्म गुण्डों का कहो;
धन के सहारे तुम हरो, हो तुम न गुण्डे हा! अहो! ॥ ४८ ॥

फैले हुये अघचार के हा! तात, जननी हो तुम्हीं;
अनमेल-वृद्धिक प्रणय के भी हाय! त्राता हो तुम्हीं।
बहु पाणि-पीड़न भी तुम्हारा हाय! पापी कर्म है,
ये रो रहीं विधवा हजारों, पर न तुमको शर्म है!! ॥ ४९ ॥

नौ-नौ तुम्हारी शादियें हों—मार पर मरता नहीं:
यों स्वत्व युवकों का हरो—तुमको न पर लज्जा कहीं!
लक्ष्मी ! अहो ! तुम धन्य ! हो—हम रूप नाना लेखते;
दुष्प्रेम भाभी पुत्रवधु से हाय ! इनका देखते ॥ ५० ॥

हा ! जाति भूतल जा चुकी, श्रीमंत तुम क्या बच चुके ?
पचास प्रतिशत हाय ! तुम में दीन भिक्षुक बन चुके !
अब द्यूत, सट्टा, फाटका श्रीमंत के व्यापार हैं;
उद्योग, धन्धे और सब इनके लिये निस्सार हैं !! ॥ ५१ ॥

तुम कल्प तक में बन्धुओ ! सट्टा न करना छोड़ते,
फिर खोलियें तो वस्तु क्या ? बाकी न कुछ हा ! छोड़ते।
यदि दीप-माला पर्व पर जो द्यूत-क्रीड़ा हो नहीं—
हा ! अपशकुन हो जायँगे—श्री तुष्ट संभव हो नहीं ॥ ५२ ॥

रसगार में, रनिवास में जीवन तुम्हारा जा रहा,
बैठे हुए हो महल में, तन में नशा-सा छा रहा।
शतरंज, चौपड़, ताश के अभिनय मनोहर लग रहे,
किलकारियों से महल के छज्जे अहो हैं उड़ रहे !! ॥ ५३ ॥

रति, रास, वैभव, ऐश में तुम धन तुम्हारा खो रहे;
सत्कार्य में देते हुये हो कोड़ि-कोड़ी रो रहे।
ऐसे धनी भी हैं कई जो पेट भर खाते नहीं,
यदि मिल गई रोटी उन्हे तो साग के पत्ते नहीं !! ॥ ५५ ॥

तुम छोड़ कर निज पत्नि को बाम्बे, सितारे में रहो,
हर ठौर मिलती पत्नि हैं, फिर व्यर्थ क्यों व्यय में रहो !
उस ओर तुमको पत्नि है, इस ओर तुमको पुत्र है;
धन-वृद्धि के यो साथ मे बढ़ता तुम्हारा गोत्र है !! ॥ ५६ ॥

है कौन सा ऐसा व्यसन जिसका न तुमको रोग हो;
दुष्कर्म है वह कौन सा जिससे न कुछ संयोग हो।
था बहुत कुछ कहना मुझे, कहना न मुझको आ रहा;
बस दुर्व्यसन, दुष्कर्म में जीवन तुम्हारा जा रहा !! ॥ ५७ ॥

श्रीमन्त हो, नहिं आपको तो क्षुब्ध होना चाहिए;
है नीति का यह वाक्य, निदक निकट होना चाहिए।
आस्वाद भोगानंद में जब तक तुम्हारी भक्ति है;
उद्धार संभव है नहीं—क्षय हो रही सब शक्ति है ॥ ५८ ॥

यह मानना, अवमानना—इच्छा तुम्हारी आपकी;
माना न—आशातीत तो होगी बुरी गत आपकी।
यदि अब दशा ऐसी रही—जीने न चिर दिन पायँगे;
इतिहास से जग के हमारे नाम भी उड़ जायँगे !! ॥ ५९ ॥

नौ-नौ तुम्हारी शादियें हो—मार पर मरता नहीं,
यों स्वत्व युवकों का हरो—तुमको न पर लज्जा कहीं !
लक्ष्मी ! अहो ! तुम धन्य ! हो—हम रूप नाना लेखते;
दुष्प्रेम भाभी पुत्रवधु से हाय ! इनका देखते ॥ ४० ॥

हा ! जाति भूतल जा चुकी, श्रीमंत तुम क्या बच चुके ?
पचास प्रतिशत हाय ! तुम में दीन भिक्षुक बन चुके !
अब द्यूत, सट्टा, फाटका श्रीमंत के व्यापार है,
उद्योग, धन्धे और सब इनके लिये निस्सार हैं !! ॥ ४१ ॥

तुम कल्प तक में बन्धुओ ! सट्टा न करना छोड़ते,
फिर बोलिये तो वस्तु क्या ? बाकी न कुछ हा ! छोड़ते।
यदि दीप-माला पर्व पर जो द्यूत-क्रीड़ा हो नहीं—
हा ! अपशकुन हो जायँगे—श्री तुष्ट संभव हो नहीं ॥ ४२ ॥

व्यभिचार में, रतिनाम में जीवन तुम्हारा जा रहा,
लेटे हुए हो महल में, तन में नशा-सा छा रहा।
शतरंज, चौपड़, ताश के अभिनय मनोहर लग रहे;
पिचकारियां से महल के छज्जे अहो हैं उड़ रहे !! ॥ ४३ ॥

रति, रास, वैभव, ऐश मे तुम धन तुम्हारा खो रहे;
सत्कार्य में देते हुये हो कोड़ि-कोड़ी रो रहे।
ऐसे धनी भी हैं कई जो पेट भर खाते नहीं,
यदि मिल गई रोटी उन्हे तो साग के पत्ते नहीं !! ॥ ५५ ॥

तुम छोड़ कर निज पत्नि को बाम्बे, सितारे में रहो,
हर ठौर मिलती पत्नि हैं, फिर व्यर्थ क्यो व्यय में रहो !
उस ओर तुमको पत्नि है, इस ओर तुमको पुत्र है;
धन-वृद्धि के यों साथ मे बढ़ता तुम्हारा गोत्र है !! ॥ ५६ ॥

है कौन सा ऐसा व्यसन जिसका न तुमको रोग हो;
दुष्कर्म है वह कौन सा जिससे न कुछ संयोग हो।
था बहुत कुछ कहना मुझे, कहना न मुझको आ रहा;
बस दुर्व्यसन, दुष्कर्म में जीवन तुम्हारा जा रहा !! ॥ ५७ ॥

श्रीमन्त हो, नहि आपको तो क्षुब्ध होना चाहिए;
है नीति का यह वाक्य, निंदक निकट होना चाहिए।
आस्वाद भोगानंद में जब तक तुम्हारी भक्ति है;
उद्धार संभव है नहीं—क्षय हो रही सब शक्ति है ॥ ५८ ॥

यह मानना, अवमानना—इच्छा तुम्हारी आपकी;
माना न—आशातीत तो होगी बुरी गत आपकी।
यदि अब दशा ऐसी रही—जीने न चिर दिन पायँगे,
इतिहास से जग के हमारे नाम भी उड़ जायँगे !! ॥ ५९ ॥

इनको न व्यय की है कमी, इन पर पिता का प्यार है;
भट, भाण्ड, भड़वे, धूर्त इनके मित्र-संगी-यार हैं।
शतरंज, जूआ, ताश के कौतुक अहर्निश लेख लो;
कल कण्ठियों से गूँजते प्रासाद इनके पेख लो !! ॥ ७० ॥

मेले, महोत्सव, पर्व पर इनके नजारे देखिये;
चल-चाल नखरे नाज इनके उस समय अवलोकिये।
हा ! जैन-जगती ! यह दशा होती न जानी थी कभी,
संतान की ऐसी दशा होती न जानी थी कभी !! ॥ ७१ ॥

पढ़ना-पढ़ाना सीखना तो निर्धनों का काम है,
सच पूँछिये तो पठन-पाठन ब्राह्मणों का काम है।
होकर बड़े इनको कहीं भी नौकरी करनी नहीं,
सर पुस्तकों में फिर इन्हें यों श्रम वृथा करनी नहीं !! ॥ ७२ ॥

यौवन जभी इनको हुआ, बस भूत मानों चढ़ गया,
और इनके अङ्ग में बस काम जाग्रत बन गया।
हर बात में, हर काम में बस काम इनको दीखता,
हा ! माँ व, दारा, बहन में अन्तर न इनको दीखता !! ॥ ७३ ॥

क्षण मात्र में तुम देख लो इनकी जवानी सो गई,
अब दिन बसंती है नहीं, पतझड़ इन्हे है हो गई।
वे नाज-मुजरे मर गये, सहचर मरे सब साथ में,
धन, मान, पत सब उड़ गये, भिक्षा रह गई हाथ मे! ॥ ७५ ॥

इनके परन्तु महापतन का मूल झर झरता कहाँ?
चटशाल जाने से इन्हे थी रोकती माता जहाँ।
ऐसे पिता-माता महारिपु है, उन्हे धिक्कार है,
क्या नाथ! सब यह आपको अब हो रहा स्वीकार है?॥ ७६ ॥

नैया हमारी क्या भँवर से ये निकालेंगे अहो!
क्या बुद्धि पर शिल पड़ गये? बक क्या रहे हो रे! अहो!
इस भाँति की संतान से उत्थान क्या हो पायगा?
हो जायगा—'काया पलट' इनका अगर हो जायगा ॥ ७७ ॥

निर्धन

जिन जाति! तेरी हाय! यह कैसी बुरी गत हो गई!
हा! चन्द्रिका से क्यों बदल काली अमा तू हो गई!
हे बन्धुओ! यह क्या हुआ! क्या तुम न चेतोगे अभी!
हे नाथ! दिन वे चन्द्रिकायुत क्या न लौटेंगे कभी!! ॥ ७८ ॥

पच्चास प्रतिशत पूर्व निर्धन हूँ तुम्हे मैं कह चुका;
पर दैन्य, क्रन्दन, दुर्दशा का कुछ न वर्णन कर सका!
कहने लगा अब हाय! क्या आवाज तुम तक आयगी!
प्रासाद-माला चीर कर क्या क्षीण-लहरी जायगी!! ॥ ७९ ॥

ये भी कहाते सेठ हैं, पर पेट भरता है नहीं,
स्वीकार इनको मृत्यु है, दैन्यत्व स्वीकृत है नहीं।
निर्लज्ज होकर तुम मरो, ये लाज से मरकर मरें;
तुम खूब खाकर के मरो, हा ! ये क्षुधित रहकर मरें ! ॥ ८० ॥

जिस जाति में श्रीमन्त हों—कैसे वहाँ धनहीन हों !
दयवंत हैं धनवंत यदि—कैसे वहाँ पर दीन हों !
मनहंत पर जिन जाति के श्रीमन्त जन हैं दीखते;
फिर क्यों न निर्धन बन्धु उनके ठोकरों में दीखते !! ॥ ८१ ॥

कहते इन्हें भी सेठ हैं अरु शाह-पद अभिराम है;
बक्काल, वणिया, वणिक भी इनको मिले उपनाम हैं।
क्या अर्थ है श्रीमन्त को इस ओर क्यों देखें भला;
देखें इधर कुछ अगर वे—छू मंत्र हो जावे बला ॥ ८२ ॥

श्रीमंत के आराम के ये दीन ही दृढ़ धाम हैं;
उनके मनोरथ काम के सब भाँति ये तरु काम हैं।
इस हेतु ही शायद इन्हें वे दीन रखना चाहते,
वे [illegible] इनहीं—[illegible] की मंजिल उठाना चाहते ॥ ८३ ॥

कन्या कहो, बाजार मे फिर क्यों न विकनी चाहिए ?
निर्मूल निर्धन हो रहे—क्या युक्ति करनी चाहिए ?
इस पाप के विस्तार के श्रीमन्त ही अवतार है;
श्रीमन्त संयम कर सके—भव पार बेड़ा पार है ॥ ८५ ॥

क्या अन्य कार्याभाव में व्यापार यह अनिवार्य है ?
क्या अर्थहीनो का कही होता न कोई कार्य है ?
क्यो बेच कर तुम भी सुता को तात की शादी करो ?
हा ! क्यों न तुम निर्धन मनुज मिलकर सभी व्याधी हरो ॥८६॥

होते हुये तुम युक्ति के यदि हो सुता तुम बेचते;
धिक् ! धिक् तुम्हे शत वार है ! तुम मांस कैसे बेचते ?
रे ! पुरुष का पुरुषार्थ ही कर्तव्य, जीवन धर्म है;
चीर कर विपदावरण को पार होना धर्म है ॥ ८७ ॥

श्रीमन्त का ही दोष है—ऐसा न भाई ! मानना;
अस्सी टका अपने पतन में दोष अपना जानना।
तुम चोर हो, मक्कार हो, झूठे तुम्हारे काम हैं;
बक्काल, वणिया, मारवाड़ी ठीक हो तो नाम हैं ॥ ८८ ॥

श्रीमन्त जैसी आय तुमको हो नहीं है जब रही;
श्रीमन्त की फिर होड़ करने की तुम्हे क्यों लग रही।
प्रतियोगिता के जाल में चिड़िया तुम्हारी फँस गई;
सब पंख उसके कट गये, वह बदन से भी छिल गई ॥ ८९ ॥

था एक दिन ऐसा कभी—हम में न कोई दीन था;
पुरुषार्थ-प्राण थे सभी—सकता कहाँ मिल हीन था?
पर आज हमको पूर्व भव तो भूल जाना चाहिए;
अब तो हमें इस काल में कुछ युक्ति गढ़ना चाहिए ॥ ६० ॥

श्रीमन्त यदि कुछ कर दया कल कारखाने खोल दें,
व्यापार हित हाटें कई भूभाग भर में खोल दें,
तो बस हमें उठते हुये कुछ देर लगने की नहीं,
हे नाथ! क्या इस जाति का उत्थान होगा ही नहीं? ॥ ६१ ॥

साधु-मुनि

अब इतर मत के साधुओं को देखते हम आज हैं,
तब तो हमारे साधु-मुनि आदर्श फिर भी आज हैं।
तप, त्याग, संयम, शील में अब भी न इनके सम कहीं,
कुछ एक ऐसे भी श्रमण हैं, अपर जिनके सम नहीं ॥ ६२ ॥

क्यों श्रावकों के दास गुरुवर ! आप यों हैं हो गये ?
क्यों त्याग-संयम-शील-वित खोकर असाधू हो गये ?
हमको लड़ाना ही परस्पर आज गुरुवर काम है।
करना इधर की उधर ही गुरु आपका अब काम है !! ॥ ९५ ॥

अब साधु तुम हो नाम के, वे साधु अब तुम हो नहीं।
अब साधु-गुण तो साधु में हा ! देखने तक को नहीं।
तुम क्रोध के अवतार हो, तुम मान के भण्डार हो।
संसार मायामय तुम्हारा, लोभ के आगार हो !! ॥ ९६ ॥

भगवान् पद के प्राप्ति की इच्छा उरों में जग गई,
सम्राट बनने से तुम्हारी कामनाएँ फल गई ?
भगवान हो, सम्राट हो, तुम जगद्गुरु आचार्य हो;
भगवान पर कर लग रहे, भगवान कैसे आर्य ! हो ! ॥ ९७ ॥

मुनि-वेष धरने से कहीं मन साधु होता है नहीं;
जैसा हृदय में भाव है—बाहर झलकता है वही।
तप-प्राण, त्यागी, साधु तुममें बहुत थोड़े रह गये;
भरपेट खाकर लोटने वाले सभी तुम रह गये ॥ ९८ ॥

गिरते न गुरुवर ! आप यों—हम दीन यों होते नहीं !
धन, धर्म, पत, विश्वास खोकर आज खर होते नहीं !
अभिप्राय मेरा यह नहीं की आपका सब दोष है,
कुछ आपका, कुछ काल का, अरु कुछ हमारा दोष है ॥ ९९

साध्वी

हे साध्वियो ! वंदन तुम्हें यह भक्त दौलत कर रहा,
पर देख कर जीवन तुम्हारा हाय ! मन में कुढ़ रहा।
आत्माभिसाधन के लिये संयम लिया था आपने;
संयम-नियम को भूल कर कर क्या दिया यह आपने !! ॥ १०० ॥

तुममें न गृहणी में मुझे अन्तर तनिक भी दीखता !
यह मोह-माया-जाल मुझको आप में भी दीखता।
तुम छोड़कर नाते सभी—नाते सभी विध पालतीं;
सम्यक्त्व आर्ये ! भूल कर संमोह तुम हो पालती ! ॥ १०१ ॥

तुम पति विहीना नारियों की हद चमू है बन गई;
अथवा न विधुरा नारियों की अलग परिषद् बन गई।
परिषद् चमू तो देश की रक्षार्थ आती काम है,
मतलब, उल्टा रह गया ऐसा न इनका काम है !! ॥ १०२ ॥

तुममें न कोई पंडिता, विदुषी मुझे है दीखती !
जैसी नारी गृहधाम में वैसी अभी हो दीखती !
आर्या कहातीं आप हो, आर्यत्व तुममें अब कहा !
तुममें, अनाथा विधुरी में कुछ नहीं अन्तर यहाँ !! ॥ १०३ ॥

लड़ने लगो जब तुम परस्पर वह छटा तो पेख्य है !
को-दण्ड है डण्डे तुम्हारे, पात्र शर सम लेख्य हैं !
कर-पाद भी उस काल में देते गदा का काम है !
मुँह-यंत्र की तो क्या कहूँ—वह तो कला का काम है !! ॥ १०५ ॥

संयम-व्रता इन नारियों का यह पतन ! हा ! हत ! हा !
कह कर चली थी मोक्ष की जो, तपन में भी हैं न हा !!
श्रीसंघ को इस भाँति से विभु ! भग्न करना था नहीं !
नम्रत्व का जैनत्व में से भाव हरना था नहीं !! ॥ १०६ ॥

श्रीपूज्य-यति

श्रीपूज्य, यति जिनका अधिक सम्राट से भी मान था,
किस भाँति अकबर ने किया यति हीर का सम्मान था ।
पर आज ऐसे गिर गये ये—पूछना कुछ है नहीं !
अब दोष-आकर हैं सभी, वह त्याग-संयम है नहीं !! ॥ १०७ ॥

अनपढ़ तथा ये मूर्ख है, अरु घोर विषयासक्त हैं !
भंगी, भड़ेड़ी, कामरत नर आज इनके भक्त है !
अब यंत्र, मोहन-मंत्र में श्रीपूज्य-पद हा ! रह गया !
यह यंत्र नारी-जगत मे बन कर विहंगम उड़ गया !! ॥ १०८ ॥

कुलगुरु

ये आज कुलगुरु सब हमारे दीन, भिक्षुक हो गये !
हो क्यों न भिक्षुक, दीन विद्याहत जब ये हो गये !
ये पड़ गये सब लोभ मे, व्यसनी, रसीले हो गये !
आदर्श कुलगुरु थे कभी, अब भृत्य देखो हो गये !! ॥ १०९ ॥

जैन जगती

तीर्थ-स्थान

ये तीर्थ मंगल-धाम हैं, ये मोक्ष की सोपान हैं,
उन पूर्वजों की तप-तपस्या, मुक्ति के ये थान हैं।
अपवर्ग साधन के जहाँ होते रहे नित काम हैं।
अब देख लो होते वहाँ रसचार के सब काम हैं!! ॥ ११० ॥

रस-भोग-भोजन के यहाँ अब ठाट रहते हैं सदा!
गुण्डे दुराचारी जनों के जुत्थ फिरते हैं सदा!
मेलादि जैसे पर्व पर होती यमती मौज है।
सर्वत्र मधुवन वीथियों में प्रेयसी-प्रिय-खोज है!! ॥ १११ ॥

प्रति वर्ष लाखों का वृथा धन खर्च इनमें हो रहा!
हा! देव-धन से काम यों लाखों जनों का हो रहा!
अतिशय, कलह, वैषम्य के अब तीर्थ मेले मूल हैं!
इसमें हमारी भूल है इनकी न कुछ भी भूल है ॥ ११२ ॥
जब देखते हैं नेत्र इनको बूंद दो पड़ती यहाँ!
अब ये तपोवन हैं नहीं, जगता मनोभव ही यहाँ!
अब दर्श भी बिन शुल्क के भगवान के मिलते नहीं!
अब ईश के दरबार में भी घूस बिन अवसर नहीं!! ॥ ११३ ॥

मंदिर और पुजारी

सौन्दर्य्य के प्यासे दृगों के खूब लगते ठाट हैं !
ये ईश के आवास अब सौन्दर्य्य के ही हाट हैं !
हा ! ईश के आवास में होती अनङ्गोपासना !
प्रत्यक्ष अब इन मंदिरो मे दीखती दुर्वासना ! ॥ ११५ ॥

साम्प्रदायिक कलह

हा ! चन्द्रिका के राज्य में कैसी अमा है यह पड़ी !
दिन राज के अधिराज मे कैसी निशा की यह घड़ी !
हमको सुधा में हा ! गरल का स्वाद अब आने लगा !
बन्धुत्व में शत्रुत्व का हा ! भाव अब भरने लगा ! ॥ ११६ ॥

जो चढ़ चुका है शृङ्ग पर फिर निम्नगा भी है वही,
कैसे बढ़े फिर शृङ्ग से, जब ठौर आगे है नहीं ।
ऐसी दशा मे लौटना होता न क्या अनिवार्य है ?
पर हाय ! हम तो गिर पड़े भिडकर परस्पर आर्य ! हे ॥११७॥

मतभेद मे शत्रुत्व के यदि भाव जो भरने लगे,
झरने वहाँ विषधार के फिर देखलो झरने लगे।
अन्न, जल, पवमान तब विषभूत होंगे देख लो,
उद्भिज, मनुज, खग, कीट भी विषकुम्भ होंगे लेख लो ॥११८॥

हा ! आज ऐसा ही हमारी जाति का भी हाल है !
प्रत्येक बच्चा, प्रौढ़ इसका हाय ! तक्षक व्याल है !
उत्थान की अब आश हमको छोड़ देनी चाहिए;
धिक्कार ! हमको श्वान की दुर्मौत मरनी चाहिए ॥ ११९ ॥

ये तो दिगम्बर हैं नहीं, नंगे लड़ाकू दीखते!
ये श्वेतपटधारी नहीं, ये भूत मुझको दीखते!
इनको सहोदर हाय! हम सोचो भला कैसे कहें?
अखिलेश के ही सामने पद-त्राण जब इनमें चलें!! ॥ १२० ॥

होकर पुजारी एक के ये हाय! डण्डों से लड़े!
फिर क्यों न इनके देव पर हा! दाव दूजों के पड़े!
धिक्कार! कैसे जैन हैं! क्या जैन के ये काम हैं!
गतराग जो गतद्वेष जो हा! जैन उसका नाम है ॥ १२१ ॥

हर एक अपने बन्धु को ये शत्रु कट्टर मानते!
इनसे भले तो श्वान हैं जो अन्त मिलना जानते!
ये एक दूजे को अहो निर्मूल करना चाहते!
ये मार कर अपना सहोदर बन्धु रहना चाहते!! ॥ १२२ ॥

लड़ते हुए इस भाँति से बरबाद दोनों हो चुके!
छोटे सहोदर खो चुके, दोनों समर में सो चुके!
निर्धन, पतित अब दीन ये दुखो बिचारे हो रहे!
इनके घरों को देख लो बैठक मृतक के हो रहे!! ॥ १२३ ॥

ओ ! देखते हो क्या दिगम्बर ! चार तुममें भेद हैं,
आशा न तुम जय की करो, तुममें जहाँ तक छेद हैं ।
हा ! श्वेताम्बर भी अहो ! है खण्ड-मण्डित हो रहा;
बाहर तथा भीतर अहो ! यम चक्र गतिमय हो रहा ॥ १२५ ॥

बावीसपंथी मूर्त्तिपूजक लड़ रहे मुख-पत्ति पर !
दोनों हताहत हो रहे गैसें विषैली छोड़ कर !
झगड़े सभी इनके अहो ! बेनीम हैं निस्सार हैं !
बावीसपथी मन्दिरों को तोड़ने तैय्यार हैं !! ॥ १२६ ॥

वैष्णव-सनातन मन्दिरों में शौक से ये रह सके,
चौमास-भर ये इतर मत के मन्दिरों में रह सके ।
पर जैन-मन्दिर के नहीं ये सामने तक जायँगे,
हा ! चीर कर ये दुर्दिवस कैसे भले दिन आयँगे !!! ॥ १२७ ॥

क्या अर्थ 'पूजा' का करो ? क्यों हो परस्पर लड़ रहे ?
अन्तर तुम्हारे बोलता क्या काल ? क्यों तुम अड़ रहे ?
आतिथ्य, रक्षण, मान, अरु औचित्य इसके अर्थ है,
अनुसार श्रद्धा, भक्ति के बहु रूप हैं, बहु अर्थ हैं ॥ १२८ ॥

मूर्ति कहते हो जिसे, मैं शास्त्र भी कहदूं उसे;
मूर्ति कह सकते उसे मैं शास्त्र कहता हूँ जिसे।
एक कागज़ का बना, दूजा बना पाषाण का,
वाक़लन भगवान का, वह भान है भगवान का ॥ १३५ ॥

दर्शता पर शुल्क का फिर प्रश्न है रहता नहीं,
का कभी वह मूल्य है, जो मूल्य कंचन का नहीं।
स्वेश की यह मूर्ति है, इसका न कोई मूल्य है,
सने हमारा राग हो, उसके न कोई तुल्य है ॥ १३६ ॥

शास्त्र, आगम, निगम है विद्वान् जन के काम के,
र बिम्ब तो अज्ञान के. विद्वान् के सम काम के।
हित्य की ये दृष्टि से दोनों कला के अंश हैं,
न-मैल धोने के लिये ये अम्बुकुल-अवतश हैं ॥ १३७ ॥

र्थात् आगम है वही शिवमार्ग का जो ज्ञान दे,
शिवमार्ग जो शंकर गये यह बिम्ब उनका भान दे।
त्थान-उन्नति के लिये दोनों अपेक्षित एक-से;
भूत भारत वर्ष के इतिहास दोनों एक-से ॥ १३८ ॥

मयज्ञ थे पूर्वज हमारे भूत, भावी, आज के;
सब के लिये वे रख गये साधन सभी सब साज के।
पूजा* प्रतिष्ठा मूर्ति की अब क्यों न होनी चाहिए?
मतभेद कह कर शत्रुता यों पालना नहि चाहिए ॥ १३९ ॥

---

* प्रसिद्धि

आलाप तेरहपंथ का अंतिम दिवस का नाद है,
चहुँ ओर क्रन्दन, शोर हैं, अपवाद, निन्दावाद हैं।
इन सब कलह की डोर है गुण्डे जनों के हाथ में;
ये भूत कैसे लग गये शाश्वत हमारे साथ में ॥ १४० ॥

रहते हुए इन दम्भियों के प्राण उठ सकते नहीं;
पारम्परिक मतभेद के भी राग मर सकते नहीं।
बावीस ! तेरहपंथियो ! ओ दिग्पटो ! श्वेताम्बरो !
हे बन्धुओ ! निज बन्धु को यों मार कर तुम मत मरो ॥१४१॥

कुशिक्षा

शिक्षा कहूँ अथवा इसे कुलटा कहूँ या चाण्डिनी,
कुलनाशिनी, धनहारिणी, आतंकप्रदंडी-मालिनी।
शिक्षे ! तुम्हारा नाश हो, भिक्षा मिलाती हो हमें,
भिक्षुक बनाकर हाय ! रे ! दर दर फिराती हो हमें ॥ १४२ ॥

पाश्चात्य मृदंग सीखकर हम तबलची कहला रहे,
हर वर्ष बी० ए०, एम० ए० बढ़ते हुए हैं जा रहे।
यदि हो न बी० ए०, एम० ए० रक्खी कहाँ हैं नौकरी!
डिगरी बिना हम निर्धनों को है कहाँ पर छोकरी!! ॥ १४५ ॥

प्राचीन प्राकृत, देव भाषा सीखते है हम नहीं,
इनके सिखाने की व्यवस्था है न अब सम्यक् कहीं।
फिर देश के प्रति तुम कहो अनुराग कैसे जम सके?
दासत्व के कैसे कहो ये भाव उर से उड़ सके? ॥ १४६ ॥

जापान, लण्डन, फ्रांस में शिक्षार्थ हम है जा रहे,
आते हुये दो एक लेडी साथ में ले आ रहे।
शिक्षा-प्रिया के साथ में लेडी-प्रिया भी मिल गई,
हम मैन इङ्गलिश बन गये बस मुनसफी जब मिल गई! ॥१४७॥

जो पा चुके शिक्षा यहाँ, उनको बुभुक्षा मिल गई!
हा! भाग्य उनके खुल गये, यदि रोटियाँ दो मिल गई!
नीचा किये शिर रात दिन वे काम, श्रम करते रहे;
फिर भी विचारे स्वामियों के झाड़ते जूते रहे ॥ १४८ ॥

आराम में बस प्रथम नम्बर एक ऐड्वोकेट हैं;
दो बन्धु आपस में लड़ा ये भर रहे पाकेट हैं।
ये भी विचारे क्या करें, इसमें न इनके दोष हैं;
जैसी इन्हें शिक्षा मिली, वैसा करें—निर्दोष हैं ॥ १४९ ॥

आलाप तेरहपंथ का अंतिम दिवस का नाद है;
चहुँ ओर क्रन्दन, शोर हैं, अपवाद, निन्दावाद है।
इन सब कलह की डोर है गुण्डे जनो के हाथ में;
ये भूत कैसे लग गये शाश्वत हमारे साथ में ॥ १४० ॥

रहते हुए इन दम्भियों के प्राण उठ सकते नहीं;
पारम्परिक मतभेद के भी रोग मर सकते नहीं।
मार्गीय ! तेरहपंथियो ! ओ दिग्पटो ! श्वेताम्बरो !
हे बन्धुओ ! निज बन्धु को यों मार कर तुम मत मरो ॥१४१॥

कुशिक्षा

शिक्षा कहें अथवा इसे कुल्टा कहें या घातिनी,
कुलनाशिनी, धनहारिणी, आतङ्कदेवी-भामिनी।
शिक्षे ! तुम्हारा नाश हो, शिक्षा मिलानी हो हमें,
जिस के लगाकर हाय ! हे ! दुर्मद मिटाती हो हमें ॥ १४२ ॥

पाश्चात्य मृदंग सीखकर हम तबलची कहला रहे;
हर वर्ष बी० ए०, एम० ए० बढ़ते हुए हैं जा रहे।
यदि हो न बी० ए०, एम० ए० रक्खी कहाँ है नौकरी !
डिगरी बिना हम निर्धनों को है कहाँ पर छोकरी !! ॥ १४५ ॥

प्राचीन प्राकृत, देव भाषा सीखते है हम नहीं,
इनके सिखाने की व्यवस्था है न अब सम्यक् कहीं।
फिर देश के प्रति तुम कहो अनुराग कैसे जम सके ?
दासत्व के कैसे कहो ये भाव उर से उड़ सके ? ॥ १४६ ॥

जापान, लण्डन, फ्रांस में शिक्षार्थ हम है जा रहे;
आते हुये दो एक लेडी साथ में ले आ रहे।
शिक्षा-प्रिया के साथ में लेडी-प्रिया भी मिल गई,
हम मैन इङ्गलिश बन गये बस मुनसफी जब मिल गई ! ॥१४७॥

जो पा चुके शिक्षा यहाँ, उनको बुभुक्षा मिल गई !
हा ! भाग्य उनके खुल गये, यदि रोटियाँ दो मिल गई !
नीचा किये शिर रात दिन वे काम, श्रम करते रहे;
फिर भी विचारे स्वामियों के झाड़ते जूते रहे ॥ १४८ ॥

आराम में बस प्रथम नम्बर एक ऐड्वोकेट हैं;
दो बन्धु आपस में लड़ा ये भर रहे पाकेट हैं।
ये भी विचारे क्या करें, इसमें न इनके दोष हैं;
जैसी इन्हें शिक्षा मिली, वैसा करें—निर्दोष हैं ॥ १४९ ॥

जैन शिक्षण-संस्थाएँ

विद्याभवन, चटशाल हैं या रोग के आवास हैं,
वैमन्य, मत्सर, द्वेष के या साम्प्रदायिक वास हैं!
पौशाल कारावास हैं, अभियुक्त हैं बालक यहाँ,
हैं घूमते हन्टर लिये शिक्षक सभी जेलर यहाँ ॥ १५० ॥

विद्याभवन तो नाम है, विद्या न है पर नाम को!
विद्यार्थियों को मिल रही विद्या यहाँ हरिनाम की!
यदि शिष्य-गणना ठीक है, शिक्षक अधूरे हैं यहाँ!
शिक्षक जहाँ भरपूर हैं तो शिष्य थोड़े हैं वहाँ! ॥ १५१ ॥

गुरु, शिष्य दोनों की जहाँ गणना उचित मिल जायगी,
पर कायदों की लिस्ट आफत तुमको वहाँ पर पायगी।
[illegible] संस्था में नहीं—जैसे न गुरुकुल आज हैं,
[illegible] व्यवस्था [illegible] आती [illegible] हैं! ॥ १५२ ॥

खण्डन, स्वमण्डन के सिवा होती न शिक्षा है यहाँ !
बस साम्प्रदायिक सैन्य ही तैयार होता है यहाँ !
चटशाल, छात्रावास, गुरुकुल फूट के सब बीज हैं !
इनके बदौलत आज रे ! हा ! हम अकिंचन चीज हैं !! ॥ १५५ ॥

आश्चर्य क्या रतिचार का शिक्षण यहाँ संभव मिले !
हा ! क्यों न ऐसे गुरुकुलों में सृष्टि-शिक्षण वर मिले !
शिक्षक गणो ! तुम धन्य हो, हे तंत्रियो ! तुम धन्य हो !
निर्बोध बच्चों के अहो ! माता-पिता ! तुम धन्य हो ! ॥ १५६ ॥

बालक यहाँ सब मूर्ख हैं, आता न अक्षर एक हा !
यदि अड़ गये—मर जायँगे—देंगे न जाने टेक हा !
इनमें कहीं पर धेनु-से भोले तुम्हें मिल जायँगे !
विश्वास देकर दुष्ट गण उनको अहर्निश खायँगे !! ॥ १५७ ॥

विद्याभवन आये दिवस हर ठौर खुलते जा रहे;
फिर बैठ जाते फेन-से, ये दीप बुझते जा रहे !
यह जैन गुरुकुल सादड़ी का बद हा ! कैसे हुआ ?
इसको न थी कोई कमी यह भग्न गति कैसे हुआ ? ॥ १५८ ॥

होगा भला इनमें नहीं, हे भाइयो ! खोलो नयन,
हा ! ये न विद्यावास हैं, हैं ये सभी रोगायतन !
जब तक व्यवस्था एक विधि सब की न बनने पायगी,
उत्थान-तरुवर-शाख हा ! तब तक न फलने पायगी ॥ १५९ ॥

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा आज होने जा रही,
इसमें न है साहित्य जिसका, जाति वह खल खा रही।
यह काल प्राकृत, देवभाषा के लिये अनुदार है;
हिन्दी न आती हो जिसे, जीवन उसी का भार है॥ १६५॥

पत्रकार

लेखन कला कुछ आगई, कुछ युक्ति देनी आगई;
प्रारम्भ करने पत्र की अभिलाष मन में आ गई।
संवाद झूठे दे रहे—ये विष-वमन है कर रहे,
ये पतन की पाताल में जड़ और दृढ़तर कर रहे !!॥ १६६

ये व्यक्तिगत आक्षेप करने से नहीं है चूकते;
टुकड़ा न कुछ मिल जाय तो ये श्वानवत है भूँकते।
छींटे उड़ाना ही रहा अब प्राय इनका काम रे!
झूठी प्रशंसा कर सके पा जायँ यदि कुछ दाम रे!॥ १६७॥

इनको न जात्युद्धार पर कुछ लेख है लिखना कहीं!
इनका न विज्ञापन-कला बिन काम रे! चलता कहीं।
अपवाद, खण्डन छाप देंगे भग्न करके शान्ति को;
इनको नमन शत बार है, है नमन इनकी क्रान्ति को!!॥ १६८॥

उपदेशक व नेता

आख्यायिका कुछ आगईं, कुछ याद जीवन हो गये,
कुछ आपके कुछ दूसरों के ज्ञात अनुभव हो गये,
कुछ सुक्तियों का युक्तिपूर्वक बोलना भी आ गया;
व्याख्यान-दाता हो गये, मुँह फाड़ना जब आ गया॥ १६९॥

शिक्षा न दीक्षा है यहाँ, आलस्यता उन्माद है,
अपकर्ष, चौर्य्याचार है, स्वच्छंदता, अपवाद है।
कितनेक शिक्षण भवन हैं? जो गर्वपूर्वक कह सकें—
हम धर्म सेवी भक्त इतने देश को हैं भर सकें॥ १८॥

तुमको हमारे गुरुकुलों में यह नयापन पायगा,
बस जैन बालक के सिवा बालक न दूजा पायगा।
नहिं जाति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के ये काम के,
ये उदर-पोषक हाट हैं अध्यापकों के नाम के!" १९॥

"आदर्श, पंडित, योग्य शिक्षक यदि कहीं मिल जायगा,
तो रह सकेगा वह नहीं, या वह निकाला जायगा।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible]
[illegible] [illegible] जैन-[illegible] में मिल पायेंगे'॥ २०॥

निदान

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा आज होने जा रही,
इसमें न है साहित्य जिसका, जाति वह खल खा रही।
यह काल प्राकृत, देवभाषा के लिये अनुदार है;
हिन्दी न आती हो जिसे, जीवन उसी का भार है ॥ १६५ ॥

पत्रकार

लेखन-कला कुछ आगई, कुछ युक्ति देनी आगई;
प्रारम्भ करने पत्र की अभिलाषा मन में आ गई।
संवाद झूठे दे रहे—ये विष-वमन हैं कर रहे;
ये पतन की पाताल में जड़ और दृढ़तर कर रहे !! ॥ १६६

ये व्यक्तिगत आक्षेप करने से नहीं हैं चूकते,
टुकड़ा न कुछ मिल जाय तो ये श्वानवत हैं भूँकते।
छींटे उड़ाना ही रहा अब प्राय इनका काम रे!
झूठी प्रशंसा कर सकें पा जायँ यदि कुछ दाम रे! ॥ १६७ ॥

इनको न जात्युद्धार पर कुछ लेख है लिखना कहीं!
इनका न विज्ञापन-कला बिन काम रे! चलता कहीं।
अपवाद, खण्डन छाप देंगे भग्न करके शान्ति को
इनको नमन शत बार है, है नमन इनकी क्रान्ति को!! ॥ १६८ ॥

उपदेशक व नेता

आख्यायिका कुछ आगई, कुछ याद जीवन हो गये,
कुछ आपके कुछ दूसरों के ज्ञात अनुभव हो गये,
कुछ सुक्तियों का युक्तिपूर्वक बोलना भी आ गया;
व्याख्यान-दाता हो गये, मुँह फाड़ना जब आ गया ॥ १६९ ॥

अभिप्राय मेरा यह नहीं—ऐसा न होना चाहिए,
व्याख्यानदाता बस प्रथम आदर्श होना चाहिए।
अभिव्यक्त करने की कला चाहे भले भरपूर हो,
वह क्या करेगा हित किसी का, त्याग जिससे दूर हो ॥ १७५ ॥

संगीतज्ञ

सगीत ज्ञाता आज गायक रडियों-से रह गये !
गायन सभी हा ! ईश के—गायन मदन के बन गये !
सुनकर उन्हें अब भावना विभु-भक्ति की जगती नहीं !
कामाग्नि उठती भड़क है, मन-आग हा ! बुझती नहीं !!! ॥ १७६ ॥

गायक रिझाने ईश को अब गान हैं गाते नहीं !
ये भक्ति-भावों को जगाने गान हा ! गाते नहीं !
श्रीमन्त इनके ईश हैं ! उनको रिझाना है इन्हें !
दुर्वासना मनमत्थ की उनकी जगाना है इन्हें !!! ॥ १७७ ॥

सगीत अब बाजारू है, हा ! शक्ति हो तो क्रय करो !
हे गायको ! तुम देख ग्राहक गान नित सुन्दर करो !
संगीत अब हा ! रह गये सामान पोषण के अहो !
कविता कवीश्वर कर रहे अनुकूल ग्राहक के अहो !! ॥ १७८ ॥

मृत को जिलाने की अहो ! सगीत में जो शक्ति थी,
हा ! गायकों के कण्ठ से जो फूट पड़ती भक्ति थी;
वह फेर में पड़ पेट के हा ! गायकों के पच गई !
महफिल सजाने की हमारी चीज अब वह बन गई !!! ॥ १७९ ॥

जैन ज्ञानी

साहित्य-प्रेम

साहित्यिकों का भाव तो हा! क्यों भला होने लगा;
जो पढ़ते उनमें हमारा अर्थ क्या सरने लगा!
न भी अगर होते कहीं शशि, सूर तो संतोष था!
भारतवर्ष कोई काल में हा! एक कोविद-कोष था!!! ॥ १८० ॥

साहित्य का आनन्द हमको हाट में ही रह गया!
हा! नव सृजन साहित्य का अब बाट में ही रह गया!
रत्न कोई हाट पर यदि भाग्य से आ जायगा;
वह, मार कर साथ में दो चाट मुँह पर खायगा!!! ॥१८१॥

साहित्य

अब आधुनिक साहित्य पर भी ध्यान देना चाहिए,
साहित्य युग का चित्र है—आनयन लखना चाहिए।
साहित्य-सरवर था कभी शुचि पद्म भावों से भरा;
हा! आज वह अश्लील है अपवित्र भावों से भरा॥ १८५॥

युग, जाति का साहित्य ही बस एक सच्चा चित्र है;
जिसका न हो साहित्य वह होती अकिंचन मित्र ! है।
साहित्य जीवन-मंत्र है, साहित्य जीवन-प्राण है,
साहित्य ही सर्वस्व है, उत्थान की सोपान है॥ १८६॥

साहित्य में नव वृद्धि तो होती न कुछ भी दीखती,
कुल भ्रष्ट करने की उसे कोशीप अविरल दीखती।
कुछ इधर से, कुछ उधर से हा! अपचयन है कर रहे—
विद्वान, हा! निज नाम से पुस्तक प्रकाशित कर रहे॥१८७॥

साहित्य मौलिक आज का कौतुक, कबड्डी खेल है,
निर्बोध बच्चो का तथा यह धर-पकड का खेल है।
नहिं शब्द-वैभव श्लिष्ट है, नहि भाव रोचक है यहाँ;
रस, अर्थ का पत्ता कहीं मिलता न हमको है यहाँ॥ १८८॥

मस्तिष्क होते थे हमारे भक्ति-भावो से भरे!
चारित्र, दर्शन, ज्ञान के निर्झर सदा जिनसे झरे!
त्यागी, विरागी, धर्म-ध्वज जिनके सदा आदर्श थे!
आध्यात्म-तृष्णा के लिये रस-स्रोत वे उत्कर्ष थे!!!॥ १८९॥

शृङ्गार के निर्झर प्रवाहित आज पर वे कर रहे!
संसार में सौन्दर्य का अश्लील चित्रण कर रहे!
इन सनकों को देख कर हमको निराशा हो रही!
ज्ञानेन्द्रियों का कोष होगा रत्न-भूत क्या भी! नहीं? ॥ १९० ॥

हा! भूरि मस्यक ग्रंथ, पुस्तक रात दिन हैं छप रहे,
इनके लिये ही आज कितने छापेखाने चल रहे।
व्यय द्रव्य अगणित हो रहा, पर लाभ कौड़ी का नहीं!
मैले, अगोचर भाव हैं! हैं ग्रन्थ जोड़ी का नहीं! ॥ १९१ ॥

हो चोर, लम्पट, धूर्त, वंचक, मूर्ख, खर, मार्गोन्मुखी,
कामी, कुचाली, द्रोह-प्रिय अरु सर्वथा धर्मोन्मुखी।
पर इन नरों के आज जीवन हैं प्रकाशित हो रहे!
साहित्य में हा! हा! अपावन ग्रंथ शामिल हो रहे!! ॥ १९२ ॥

आख्यायिकोपन्यास अब साहित्य के मुख-अंश हैं !
निःकृष्ट नाटक, रास, चंपू हाय ! अब सर्वांश हैं !
उल्लेख कर रति-रूप का कवि काम-रस बतला रहे !
कामी जनों के काम को हा ! रात-दिन भड़का रहे !!! ॥१६५॥

हा ! आधुनिक साहित्य में नहिं शील-वर्णन पायगा;
कुल्टा, कुचाली नारि का आख्यान केवल पायगा !
पढ़ कर जिन्हें हम गिर रहे, है गिर रही सुकुमारियाँ।
हा ! जल-पवन जैसा मिले, वैसी खिलेगी क्यारियाँ ॥ १६६ ॥

आता न अक्षर एक है, तुक-बध करना जानते,
ग्रामीण रचना का सृजन साहित्य-रचना मानते।
निःकृष्ट ऐसे काव्य भी हा ! काव्य माने जा रहे !
विद्वान कोई भी नहीं सच्चे दृगों में आ रहे ! ॥ १६७ ॥

दौरात्म्य कवि का पात्र है, कथनीय भ्रष्टाचार है !
स्वच्छंदता, दुर्वासना, कुविचार कविता-सार है !
कवि स्वाद अमृत के चखा कर पात्र विष से भर रहे !
कलि काल का आदेश-पालन तो नहीं कवि कर रहे ? ॥१६८॥

अब आत्म-बल, सुविचार पर लेखक न लिखते लेख हैं;
आदर्शता, दृढ़ धैर्य्य के होते नहीं उल्लेख हैं।
प्राचीन आगम, शास्त्र तो इनके लिये नाचीज हैं;
प्रदिप्त नभ में पाठको ! होता न पुष्पित बीज है ॥ १६९ ॥

प्रतिकार संकट का नहीं करना सिखाते हैं कहीं;
जब तक न हो पूरा पतन विश्राम इनको है नहीं!
कवि लेखको! तुम धन्य हो, तुम कर्म अच्छा कर रहे!
अवगुण सिखा कर फिर हमें गिरने को तल—च्युत रहे ॥२००॥

आदर्श नर अरु नारि के जीवन लिखे जाते नहीं!
आख्यायिकोपन्यास के ये अब विषय होते नहीं!
नहिं शौर्य के, नहिं धर्म के हमको पढ़ाते पाठ है!
हा! आधुनिक साहित्य के तो और ही कुछ ठाट हैं!! ॥२०१॥

गति दान, संयम, शील के, तप, ज्ञान, सदाचार के—
उल्लेख लेखक, क्यों करें अब आज धर्माचार के!
[illegible] सत्ता इसमें न है इनको कहीं!
आनन्द जो शृंगार में वैराग्य में इनको नहीं!! ॥२०२॥

ज्यों अधमरा तलवार का फिर सह न सकता वार है;
ठोकर लगे को फिर लगे धक्का—पतन दुर्वार है।
जितनी सभाएँ खुल रहीं—प्रतिशोध-गह्वर-गड्ड हैं;
हम नेत्रहीनों के लिये ये हाय! गहरे खड्ड हैं ॥ २०५ ॥

करना सुधारा है नहीं, इनके दुधारा हाथ में!
करने जिसे हो एक के दो, हैं उसी के साथ में!
प्रख्यात होना है जिसे, अथवा जिसे धन चाहिए;
मिल जायँगी सुविधा सभी उसको यहाँ जो चाहिए ॥ २०६ ॥

मण्डल

अब मण्डलों का काम तो भोजन कराना रह गया;
कर्तव्य, सेवा, धर्म सब जूने उठाना रह गया।
'सब जाति मे हो संगठन' ये ध्येय इनके हैं कहाँ!
है ब्रह्मव्रत जिनमें नहीं, उनसे भला आहित है कहाँ ॥ २०७ ॥

स्त्रीजाति व उसकी दुर्दशा

हे मातृ! भगिनी! अम्बिके! जगदम्बिके! विश्वेश्वरी!
होती न जानी थी अहो! यह अवदशा मातेश्वरी!
चेरी कहो क्यों हो गईं? तुम अब रमण की चीज हो;
इस अवदशा की आप तुम मेरी समझ में बीज हो ॥ २०८ ॥

तुम में न वे पति-भाव है, तुममें न स्त्री के कर्म है!
मूर्खा सदा रहना तुम्हारा हो गया अब धर्म है!
गृह-नायिका, गृह-देवियाँ होने न जैसी आज हो!
कुल-चण्डिनी, कुल-खण्डिनी, कुल-भञ्जिका तुम आज हो !! ॥२०९॥

हा! आज तुमसे वंश की शोभा न बढ़ती है कहीं!
नर-रत्न तुम अब दे सको—यह शक्ति तुम में है नहीं!
वंध्या सभी तुम हो गईं—यह बात भी जँचती नहीं,
सन्तान की उत्पत्ति में लज्जित करो उरगी—सही ॥ २१० ॥

शीला, सुशीला, सुन्दरी सनकी न अब तुम रह गईं!
हा! साध्वियें तो मर गईं, तुम कर्कशायें रह गईं!
उजड़े भवन को आज तुम प्रासाद कर सकती नहीं!
टूटे हुए तुम प्रेम-बंधन जोड़ फिर सकती नहीं!! ॥ २११ ॥

लक्ष्मी कहाने योग्य थीं! अब हो नहीं तुम रह गईं!
सम्पन्न करने की तुम्हारी शक्तियें सब गल गईं!
विष-वृक्ष के बोना तुम्हारा बीज का अब काम है!
वामा तुम्हें जग कह रहा—वामा उचित ही नाम है ॥ २१२ ॥

संतान-पोषण भी तुम्हे करना तनिक आता नहीं !
जब मातृ तुमको क्यों कहे, तुम शत्रु हो माता नहीं !
हे नाथ ! माता इस तरह मातृत्व यदि खोने लगे,
सन्तान बोलो किस तरह गुणवान फिर होने लगे ॥ २१५ ॥

नर का नारी पर अत्याचार

नर ! नारियों के इस पतन के आप जिम्मेवार हो,
तुम कोमलांगी नारियों पर हाय ! पर्वत-भार हो ।
अधिकार इन पर कर लिया, हा ! स्वत्व इनका हर लिया !
रसचार करने के लिये उद्यान इन्हे फिर कर लिया !! ॥ २१६ ॥

रमणी कहीं हैं महल की, पर्दा-नशीना हैं कहीं,
है घालती गोमय कहीं, व्यंजन बनाती है कहीं,
व्ययशील इनका गेह में इस भाँति जीवन हो रहा !
मल-मूत्र धोना रात दिन कर्तव्य इनका हो रहा !! ॥ २१७ ॥

कहला रहीं अर्धाङ्गिनी, पर हा ! न पद सम मान है !
दुत्कार; डण्डे मारना तो हा ! इन्हे वरदान है !
कुल्टा, कुचाली, राँड, रण्डी नाम इनके पड़ रहे !
सम भाग था जिनका कभी—यों मान उनके बढ़ रहे !!! ॥२१८॥

श्रुति, नाक इनका काटना ! इनको छड़ी से दागना !
देना न भोजन मास भर ! अनघोर घर से काढ़ना !
माता-पिता को बोलना अपशब्द इनके हाय ! रे !
आसान हैं ये काम सब ! भारत न अब वह हाय ! रे !! ॥२१९॥

व्यभिचार जैसे कर्म भी होते हमारे क्षम्य हैं !
अपराध अबला के सरल होते नहीं पर क्षम्य हैं !
सम्मान नारी जाति के जिस जाति में होते नहीं !
उस जाति के हा ! शुभ दिवस आये न, आवेंगे नहीं ॥ २२० ॥

विदुषी बनाने के लिये नर यत्न तो करते नहीं,
इनके पतन में हाय ! फिर दोषी मनुज कैसे नहीं !
तुम हो सुता के जन्म पर दुर्भाग्य अपना मानते !
तुम पितृ होकर सुत, सुता में भेद कैसे जानते ? ॥ २२१ ॥

व्यापार

कौशल रहा व्यापार को अब वे न बातें हाय ! हैं !
मार्केट में हम खा रहे उठती न चालें हाय ! हैं !
हा ! देश निर्धन हो रहा, हा ! जाति निर्धन हो रहा !
सम्मान पाकर हाय ! हम-सी मात्र-भूमी रो रहा ! ॥ २२२ ॥

व्यापार में थे अग्रणी, हा ! आज पीछे भी नहीं !
थे विश्व-पोषक एक दिन, अब पेट को पटती नहीं !
व्यापार कौड़ी का हुआ, कौडी बने हम साथ में !
अब तेल मिर्चे रह गईं, तकड़ी हमारे हाथ में !! ॥ २२५ ॥

था सत्यमय व्यापार, शाहूकार हम थे एक दिन !
अब हा ! हमारा रह गया है झूठ में व्यापार—घिन !
हमको हमारे धर्म से भी झूठ प्रियतर हो गया !
अब तो कहें क्या, झूठ तो हा ! स्नायु तन का हो गया !! ॥२२६॥

कर झूठ-सच्चा हाय ! हम निज बन्धुओं को लूटते ।
उनके रसीले रक्त-धन को जोंक बन कर चूंसते ।
डाकू, लुटेरे, चोर अब हमको सभी कहने लगे ।
व्यापार के सम्बन्ध हमसे बन्ध सब करने लगे ॥ २२७ ॥

हम आज भी श्रीमन्त है, व्यापार भारी कर सकें,
लाकर विदेशो से तथा धन राशि घर को भर सकें ।
जिस चीज की सर्वत्र हो अति मांग—वह पैदा करे,
कल कारखाने खोल दे, पक्का सदा धंधा करें ॥ २२८ ॥

मिलती हमे जब दाल रोटी, कौन यह झंझट करें !
है कौन सी हममें पड़ी ऐसी विपद्—खटपट करें !
सस्ता विदेशी बन्धु को हम माल कच्चा बेचते !
फिर एक के वे पांचसौ लेकर हमे है भेजते !! ॥ २२९ ॥

द्यू, फाटका, सट्टा हमारा मुख्य धंधा रह गया!
शायद जरा है आगई, मस्तिष्क जिससे फिर गया!
जापान, जर्मन, फ्रांस जिनमें अन्न तक भी था नहीं;
सम्पन्न वे अब हो गये, अब शील भारत हा! नहीं ॥ २३० ॥

सर्वस्व घर का जा रहा, हा! क्यों न हम हैं देखते!
क्यों हम विदेशी माल में मिलता नफा हैं देखते!
सामान सारा भर गया घर में विदेशी हाय! क्यों!
घर से स्वदेशी माल को हमने निकाला हाय! क्यों? ॥२३१॥

हे नाथ! ऐसा तादिम का कैसा विचित्र स्वभाव है?
जो देश के प्रति अब रहे कुछ भी नहीं सद्भाव है!
जब तक विदेशी माल का आना न रोका जायगा;
तब तक निरन्तर दीन भारतवर्ष होता जायगा!! ॥ २३२ ॥

आत्म-बल व शक्ति

मुझको तुम्हारी इन नसो में बल नहीं है दीखता,
क्या अंत-घड़ियों आ गई हैं !—दम निकलता दीखता !
इस मरण मे होगी नहीं चिन्ता मुझे किचित कहीं;
क्या लाभ है उस देह से, है प्राण उसमें जब नहीं ? ॥ २३५ ॥

पर पूर्वजों के नाम पर कालिख कहो क्यों पोत दी ?
कौस्तुभ-मणी को हाय ! तुमने पंक में क्यों छोड दी ?
जीना जिसे—मरना उसे, मरना जिसे—जीना उसे;
अवध्वस्त होकर जो मरे, दुर्मौत है मरना उसे ॥ २३६ ॥

कायर तुम्हे बक्काल, बणिया आज जग है कह रहा !
कुछ बोलने के भी लिये तो तल नहीं है मिल रहा !
तुम में न अब वह तेज है, नहि शक्ति हैं असिधार मे !
नारी सतायी जा रही है आपकी गृहद्वार मे !! ॥ २३७ ॥

नहि देश मे, नहि राज्य में कुछ पूछ भी है आपकी !
हा ! जिधर देखो मिल रही लानत तुम्हे अनमाप की !
तुम चोर गुण्डों के लिये हा ! आज घर की चीज हो !
वे घुस घरों में मौज करते-मौज की तुम चीज हो ! ॥ २३८ ॥

तुमको अहिसा-तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है;
इसको क्षमा कहना तुम्हारा भी हलाहल झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है ?
बस आतताई पर चलाना वार—जिन्दाबाद है ॥ २३९ ॥

धृ, फाटका, सट्टा हमारा मुख्य धंधा रह गया!
शायद जुआ है आगई, मस्तिष्क जिससे फिर गया!
जापान, जर्मन, फ्रांस जिनमें अन्न तक भी था नहीं;
सम्पन्न वे अब हो गये, अब शील भारत हा! नहीं ॥ २२० ॥

सर्वस्व घर का जा रहा, हा! क्यों न हम हैं देखते!
क्यों हम विदेशी माल में मिलता नफा हैं देखते!
सामान सारा भर गया घर में विदेशी हाय! क्यों!
घर से स्वदेशी माल को हमने निकाला हाय! क्यों? ॥ २२१ ॥

[illegible] नाथ! क्या जाति का कैसा विचित्र स्वभाव है?
जो देशके प्रति यह रहे कुछ भी नहीं सद्भाव है!
[illegible] विदेशी माल का आना न [illegible]
[illegible] भारत में होना [illegible] ॥ २२२ ॥

मुझको तुम्हारी इन नसों में बल नहीं है दीखता;
क्या अंत-घड़ियाँ आ गई है !—दम निलकता दीखता !
इस मरण से होगी नहीं चिन्ता मुझे किंचित कहीं;
क्या लाभ है उस देह से, है प्राण उसमें जब नहीं ? ॥ २३५ ॥

पर पूर्वजो के नाम पर कालिख कहो क्यों पोत दी ?
कौस्तुभ-मणी को हाय ! तुमने पक में क्यों छोड़ दी ?
जीना जिसे—मरना उसे, मरना जिसे—जीना उसे,
अवध्वस्त होकर जो मरे, दुर्मौत है मरना उसे ॥ २३६ ॥

कायर तुम्हें बक्काल, बणिया आज जग है कह रहा !
कुछ बोलने के भी लिये तो तल नहीं है मिल रहा !
तुम में न अब वह तेज है, नहि शक्ति है असिधार में !
नारी सतायी जा रही है आपकी गृहद्वार मे !! ॥ २३७ ॥

नहि देश मे, नहि राज्य में कुछ पूछ भी है आपकी !
हा ! जिधर देखो मिल रही लानत तुम्हे अनमाप की !
तुम चोर गुण्डों के लिये हा ! आज घर की चीज हो !
वे घुस घरों मे मौज करते-मौज की तुम चीज हो ! ॥ २३८ ॥

तुमको अहिंसा-तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है;
इसको क्षमा कहना तुम्हारा भी हलाहल झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है ?
बस आतताई पर चलाना वार—जिन्दाबाद है ॥ २३९ ॥

जिसमें न हो कुछ आत्म-बल, वह आत्म जाग्रत है नहीं,
बिन आत्म-बल के बन्धुओ! कुछ काम होता है नहीं।
सब त्याग कर के बन्धुओ! तुम प्रथम स्व-शोधन करो;
तुम खोद कर जड़ दोष की, दुख जाति के मोचन करो ॥२८०॥

हे बन्धुओ! बस आज से ही कमर कसना चाहिए,
अब हो चुका है बहुत ही, आगे न सहना चाहिए।
मिलकर सभी भाई परस्पर आज प्रतिभा लाइये,
फिर आप भी कुछ वीर जग में–सिद्ध कर दिखलाइये ॥२८१॥

अब वीर भामाशाह-सा हा! देश-सेवी है नहीं,
बदला हमारा रक्त है या रक्त हम में है नहीं!
हमको हमारे स्वार्थ का चिन्तन प्रथम रहता सदा,
हम देखते हा! क्यों नहीं आई हुई घर आपदा !!! ॥ २४५ ॥

हिन्दू हमें कहना न, हम हिन्दू भला कब थे हुये!
होकर निवासी हिन्द के है हिंद से बदले हुये!
जिनधर्म तुम हो मानते, इस हेतु भाई! जैन हो,
हिन्दू तुम्हारी जाति है, तुम हिन्दुओं मे जैन हो ॥ २४६ ॥

राष्ट्रीय भावों से भरा जिस जाति का मन है नहीं,
उस जाति का तो स्वप्न मे उद्धार सम्भव है नहीं।
जो देशवासी बन्धुओं के रुदन पर रोया नहीं,
उसके हृदय ने सच कहूँ मानवपना पाया नहीं ॥ २४७ ॥

कौलिण्यता

कौलिण्य कुलपति आपका पर्दानशी में रह गया!
गिरि पाप भी इसके सहारे ओट ही मे रह गया!
अब मार कर हा! शेखियें तुम रख रहे कुछ मान हो!
चूहे उदर में कूदते, पर मूंछ पर तो धान हो! ॥ २४८ ॥

कहदे तुम्हे 'वणिया' 'महाजन', रण वहीं मच जायगा;
उर 'शाहजी साहेब' पर दो बांस पर उठ जायगा।
महता, मुसद्दी नाम अब सब गोत्रवत हैं हो गवे!
पूर्वज मुसद्दी हो गये, पर तुम फिसड्डी हो गये! ॥ २४९ ॥

व्यापार में व्यवसाय में संकोच है होता तुम्हें!
भूखे उदर तुम भी सको, पर हाट में लज्जा तुम्हें!
हा! मद्य-सेवन चिह्न तो कौलीन्य का तुम मानते!—
कौलीनता मदिरा रमण कुल के शराबी जानते!॥१४०॥

स्वास्थ्य

अगणित हमारे रोग हैं, हा! एक हो तो बात हो।
हे नाथ! काली रात है, कैसे दिवस का प्रात हो!
मुझको यहाँ पर मानसिक संताप गिनते हैं नहीं;
अवकाश गिनने का कहाँ! जब स्वास्थ्य अच्छा है नहीं॥१४१॥

[illegible] न कोई नाम है, [illegible] न हममें मात्र हो!
हम देश में कैसे भला [illegible] न हम पर हाथ हो!
[illegible] हम हैं नाम [illegible]—रोग [illegible] कोटि हैं!
[illegible]—[illegible] न सिर पर चोटि है॥१४२॥

व ब्रह्मव्रत हममें नहीं, व्यायाम भी करते नहीं !
फर रोग, तस्कर, दुष्ट के क्यों दाँव चल सकते नहीं ?
मसे किसी को भय नहीं, हमको डराते हैं सभी !
न माल के अतिरिक्त रामा भी चुराते हैं कभी !!! ॥ २५५ ॥

सा पतन हे नाथ ! करना योग्य तुमको था नहीं !
र भाँति से यों निःस्त्र करना उचित हमको था नहीं !
गा कहाँ पर छोर ?—अब तो हे विभो ! बतलाइये ,
ब तो अबल हैं भाँति सब हम !—आश तो दिखलाइये !!॥२५६॥

धर्म-निष्ठा

य हाय ! कैसे जैन हैं, घट में न है इनके दया !
सिद्धान्त इनके हैं दयामय, हाय ! फिर भी वे हया !
बाहर सदाशय भाव है, बाहर दयामय भाव है ,
अवसर पड़े तुम देखना भीतर कि कैसे दाँव है ! ॥२५७ ॥

इन जैनियों ने झूठ में भी रस कला का भर दिया !
मीठे वचन से कर उसे मिश्रित अधिक रुचिकर किया !
व्यापार, कार्याचार, धर्माचार इनके झूठ हैं !
बाहर छलकता प्रेम है, भीतर हलाहल कूट है ! ॥ २५८ ॥

मार्जार-सा इनका तपोबल पर्व पर ही लेख्य है ;
उपवास, पौषध, सामयिक उपतप व्रताखिल पेख्य है !
निन्दा, कलह, अपवाद के व्यवसाय खुलते हैं तभी !
एकत्र होकर क्या यहाँ ये काम हैं करते सभी ? ॥ २५९ ॥

पड़ कर समय के फेर में ये वर्ण पैत्रिक धन हुये,
तब वर्ण वर्णान्तर हुये, ये जाति जात्यन्तर हुये।
इस भाँति से वर वर्ण के लाखों विभाजन हो गये!
जितने पिता हम में हुये उपगोत्र उतने हो गये! ॥ २६५ ॥

हर एक मत के नाम पर है, जाति-दल कितने हुये?
अब एक नरके देखिये उपगोत्र कुल इतने हुये।
वह आर्य, हिन्दू, जैन है, श्वेताम्बरी, श्रीमाल है,
गच्छानुगत, वंशानुगत, गोत्रानुगत के जाल हैं॥ २६६ ॥

कुल जैन तेरह लक्ष होंगे, अधिक होने के नहीं;
दस बीस सहस्र गोत्र होंगे—अल्प होने के नहीं।
इस अल्प संख्यक जाति का ऐसा भयावह हाल है।
हा! एक वह भी काल था अरु एक यह भी काल है!॥२६७॥

जात्यन्तरिक फिर रोग बढ़कर साम्प्रदायिक बन गये,
पारस्परिक व्यवहार, प्रेमाचार तक भी रुक गये।
इन दिग्पटों श्वेताम्बरों में अब नहीं होते प्रणय;
संकीर्ण दिन दिन हो रहे क्या शून्य में होने विलय? ॥२६८॥

कितने असर हम पर भयकर आज इनके घट रहे,
होकर सहोदर हाय! सब हम रण परस्पर कर रहे!
अब वह न हममें प्रेम है, सौहार्द है, वात्सल्य है;
अब प्राणनाशक फूट का चहुँ ओर हा! प्राबल्य है!! ॥२६९॥

बाजार माणिक-कोष था हा ! शाह जी अरवेश थे !
अमरावती थी हाटशाला, शाह जी अमरेश थे !
मलमल, जरी खाशा स्वदेशी हाट के सामान थे !
भर कर स्वदेशी माल को जाते सदा जलयान थे ! ॥२७५॥

अब तो विदेशी माल के ये शाह जी मध्यस्थ है !
अपने स्वदेशी माल के रे ! शत्रु ये प्रथमस्थ है !
कैसी विदेशी माल से इनकी सजी सब हाट है !
घोषित दिवाले कर चुके, पर हाट में सब ठाट है ॥२७६॥

नेता हमारे देश के नारे लगाते ही रहे !
कारण विदेशी माल के वे जेल जाते ही रहे !
सहता रहे यह देश चाहे यातनाएँ नित कड़ी !
ये तोड़ने हा ! क्यों लगे प्यारी प्रिया सम सुख-घड़ी ॥२७७॥

ये हेम, चांदी दे रहे, पाषाण लेकर हँस रहे !
नकली विदेशी माल से यों देश अपना भर रहे !
अपने हिताहित का न होता नाथ ! इनको ध्यान क्यों !
इनके उरों में देश पर अनुराग है जगता न क्यों !! ॥२७८॥

मेरे विभो ! इनको घृणा क्यों देश से यों होगई !
अथवा विपद के भाव से मत भ्रष्ट इनकी होगई !
तुम क्यों न चाहे जैन हो, पर देश यह है आपका !—
जिस भाँति से सम्पन्न हो यह, काम वह है आपका ॥२७९॥

ऐसा पतित गार्हस्थ्य-जीवन आज विभुवर ! हो गया !
हा ! स्वर्ग-सा गार्हस्थ्य सुख कर अब तपन-सा हो गया !
अब पुत्र की निज तात में श्रद्धा न है, वह भक्ति है !
माता-पिता की सुत, सुता पर भी न वह अनुरक्ति है ॥२८०॥

घर में न जब हा ! प्रेम है, बाहर भला कैसे बने !
हे नाथ ! ये कंटक-सदन फिर सुख-सदन कैसे बने !
फैला दिया अपना कलह ने एक विध साम्राज्य है !
और प्रेम, श्रद्धा, भक्ति का अब हा ! न वह सुर-राज्य है ॥२८१॥

फूट

आतिथ्य-सेवा

आतिथ्य, सेवा-धर्म को तुमने न जाना आज तक !
सत्कार अपना ही किया है हाय ! तुमने आज तक !
अपने उदर की भरण-विधि तो श्वान भी सब जानते !
जो भी नरानाहूत* हो भिक्षुक उसे तुम मानते ॥ २६५ ॥
जिस जाति में आतिथ्य-सेवा भावनायें है नहीं,
मानवपना कहते किसे, उसने न देखा है कहीं !
आये हुए का द्वार पर जब मान तुम नहिं कर रहे,
कंजूस, निर्मम, बेहया अतएव तुमको कह रहे ! ॥ २६६ ॥
तुम खा रहे हो सामने, सुख ऐश तुम हा ! कर रहे,
मारे क्षुधा के रो रहा वह, पर न तुम हा ! लख रहे !
अभ्यर्थना, आतिथ्य तुम अपने जनों की कर रहे !
कोई अपरिचित आगया मनुहार तक नहीं कर रहे ॥ २६७ ॥

दान

भूपेन्द्र नरपति मेघरथ कैसे सुदानी हो गये !
हरने क्षुधा वे श्येन की भी थे तुलास्थित हो गये !
देते हुये अब दान कौडी निकल जाते प्राण हैं !
क्या काम रे ! धन आयगा, तन में न जिस दिन प्राण हैं ॥ २६८ ॥
सिगरेट, माचिस, पान मे तुम हो करोड़ों खो रहे !
पर दीन, दुखिया बन्धु को देते हुये हो रो रहे !
तुम जैन हो या वर्णशकर जैन के, तुम कौन हो !
उन पूर्वजों की तो प्रजा नहिं दीखते, तुम कौन हो ! ॥ २६९ ॥

---

* नर + अनाहूत = अनिमन्त्रित अतिथि ।

कोटीश हो, लक्षेश हो, चाहे भले अलकेश हो,
सकता न कर तुलना तुम्हारी आप यदि अमरेश हो;
पर बन्धु ! वह नर काम का क्या हित न जिसने हो किया?
धन भी गया, वह भी गया, उपकृत न दीनों को किया ! ॥२००॥

जिस शील के तुम शैल पर ऊँचे कभी थे यो चढ़े;
चढ कर उसी शैलेश पर थे मोक्ष जाने को बढ़े !—
गिर कर उसी शैलेश से तुम आज चूर्णित हो गये !
संसार के तुम रज-कणों में चूर्ण होकर खो गये ॥२०५॥

पूर्वजों में संदेह

जिन पूर्वजों की देह से सम्भव हुई यह देह है,
उन पूर्वजों के वाक्य में होता हमें संदेह है ।
मति-भ्रम हुआ अथवा हमारी बुद्धि कुंठित हो गई !—
प्रस्थान की तैयारियें अथवा अनैच्छिक हो गई ! ॥२०६॥

इतिहास अनुभव का किसी भी जाति का साहित्य है;
अनुभव किसी का खोगया,उसका विगत आदित्य है ।
हमको न जाने क्या हुआ, क्यों मत हमारी खोगई ।
साहित्य ऐसे आप्त में शंका हमें क्यों हो गई ! ॥२०७॥

नव कूप कोई खोद कर तत्काल क्या जल भर सका ?
तत्काल कर कोई कृषी नहिं है क्षुधा को हर सका ।
क्या सम्पदा पैतृक कभी होती किसी को त्याज्य है ?
कुलपूत-भाजक के लिये तो भाज्य यह अभिभाज्य है ॥२०८॥

आडम्बर

वैसा न अनुभव आज है, वैसी न कोई बात है !
वैसी न अभ्र है चन्द्रिका, श्यामा अमा कुहुरात है !
फिर भी उजाला दीप का कर तोम तम हैं हर रहे;
है प्राण तो तन में नहीं, पर शव उठा कर चल रहे ! ॥२०९॥

हे नाथ ! पंकिल यों रहेंगे भक्त होकर आपके ?
सब कुछ हमारे आप हैं, हे नाथ ! हम हैं आपके ।
क्या नाथ ! दुर्दिन देश के शुभतर न हो अब पायँगे ?
तो नाथ ! अब तुम ही कहो,जीने अधिक हम पायँगे ?॥२१५॥

हे नाथ ! भारत हीन है ! संतान इसकी दीन है !
बल हीन है, मति हीन है ! हा ! घोर विषयालीन है !
सद्बुद्धि देकर नाथ ! अब हमको सजग कर दीजिये,
यह सन्तमस विपदावरण का नाथ ! अब हर लीजिये ॥२१६॥

होकर पिता क्या सुध तुम्हे लेनी नहीं है पुत्र की ?
अपयश तुम्हारा क्या नहीं, अपकीर्ति हो जब गोत्र की ?
हम हैं सनातन भक्त तेरे, आज भी हम भक्त हैं,
सब भाँति विषयासक्त होकर भी तुम्हीं में रक्त हैं ॥२१७॥

जब जब बढ़ा अतिचार जग में, जन्म तुम धरते रहे,
निज भक्तजन के दौख्य को तुम हो सदा हरते रहे ।
अब नाथ ! बन कर वीर जग में जन्म धारण कीजिये;
पुष्पित हुये इस दैन्य-वन को भस्म अब कर दीजिये ॥२१८॥

परतंत्र भारतवर्ष को स्वाधीन अब कर जाइये;
हम भक्त होकर आपके किसको भजे बतलाइये ?
बढ़ता हुआ गौवध तुम्हे कैसे विभो ! सहनीय है !
दयहीन दयनिधि ! हो रहे क्यों,जब कि हम दयनीय हैं ?॥२१९॥

जैन जगती

फिर से दयामय ! मानसों में प्रेम-रस भर जाइये;
हम पतित होकर हो रहे पशु, मनुज फिर कर जाइये।
गोपाल बनकर नाथ ! कब होगा तुम्हारा अवतरण ?
अब दुख अधिक नहिं दीजिये, हर लीजिये अब तम तरुण ॥३२०॥

स्वाधीन भारतवर्ष हो, इसके सभी दुख नष्ट हों,
यह सह चुका है दुःख अति इसको न आगे कष्ट हो।
हम भी हमारी ओर से करते यहाँ सदुपाय हैं,
पर आपके बल के बिना तो सरल सब निरुपाय हैं ॥३२१॥

कैसे कहूँ जागो यहाँ? कैसे सजग परिजन करूँ?
मैं आप तिमिरावृत हूँ, कैसे तिमिर में पद धरूँ?
जिस युक्ति से जागा रहूँ, वह युक्ति तो बतलाइये,
[illegible] मैं तो हूँ नहीं, यह आप ही दिखलाइये ॥३२२॥

भविष्यत् खण्ड

लेखनी

हा ! गा चुकी है लेखनी ! तू भूत, सम्प्रति रो चुकी !
कर ध्यान भावी का अभी से हीन संज्ञा हो चुकी ?
विस्मृत न कर व्रत लेखनी ! तुझको न व्रत क्या स्मृत रहा ?
मैं क्या लिखूँ ! कैसे लिखूँ ! मुझसे न लिखते बन रहा !!! ॥१॥

लेखनी के उद्गार—
दिनकर दिवसहर हो गया ! रजनीश कुहुकर हो गया !
जलधर अनलसर हो गया ! मृदु वायु विषधर हो गया !
रातें दुराते हो गईं ! भाई विभो ! रिपु हो गये !
आशा दुराशा हो गई ! अब धर्म पातक हो गये !!! ॥२॥

राजा प्रजारिपु हो चुके ! श्रीहंत धनपति हो चुके !
जोगी कुभोगी हो चुके ! रोगी निरोगी हो चुके !
हत् शील हा ! हत् धर्म हा ! हत् कर्म भारत हो चुका !
हो जायगा जाने न क्या, जब आज ऐसा हो चुका !!! ॥३॥

अवसर कुअवसर आज है ! हा ! बुद्धि भी सविकार है !
वैशम्य, विषया-भोग, मत्सर, राग के व्यापार हैं !
सर्वत्र अंधाचार, हिंसाचार, अधमाचार हैं !
तुममें समाकर हो गये अवशेष पापाचार हैं !!! ॥४॥

अब भी समय है चेतने का यत्न कुछ भी कर सको,
अब भी नसों में शक्ति है, जीवन मरण को हर सको।
जो हो चुका, सो हो चुका अब ध्यान उसका मत करो,
जाति उत्थान के लिए सब मन्त्रणा मिलकर करो ॥४॥

'जिन राज वाङ्मय' नाम की संस्था प्रथम स्थापित करें,
दोनों दलों के ग्रन्थ जिन-साहित्य में परिणित करें।
समोह, पक्षापक्ष का कोई नहीं फिर काम हो,
ऊपर किसी भी ग्रन्थ के नहिं साम्प्रदायिक नाम हो ॥ १० ॥

ये साम्प्रदायिक नाम यों कुछ काल में उड़ जायँगे,
संतान भावी को खटकने ये नहीं कुछ पायँगे।
यों एक दिन जाकर कभी क्रम एक विध बन, जायगा,
सर्वत्र विद्याभ्यास में यह भाव ही लहरायगा ॥ ११ ॥

हैं भिन्न पुस्तक, भिन्न शिक्षक, भिन्न हैं सब श्रेणियें,
होती न क्या पर स्कूल में हैं एक भाषा, शैलियें ?
विद्यार्थियों में किस तरह होता परस्पर मेल है ?
हो भिन्न भी यदि श्रेणियें, बढ़ता न मन में मैत्र है ॥ १२ ॥

यदि साम्प्रदायिक मोह हम इन मंदिरों से तोड़ दें,
सब साम्प्रदायिक स्वत्व को हम तीर्थ में भी छोड़ दें—
फिर देखिये कृतयुग यही कलियुग अचिर बन जायगा ;
यह साम्प्रदायिक रोग फिर क्षण मात्र में उड़ जायगा ॥ १३ ॥

यह काम यदि हो जाय तो बस जय-विजय सब होगई !
भ्रातृत्व हममें आगया, जड़ फूट की बस खो गई !
कवि, शेष वर्णन भाग्य का फिर क्या हमारे कर सकें ?
हम-सा सुखी संसार में फिर कौन बोलो रह सके ! ॥ १४ ॥

देखो न विधवाये घरों में किस तरह है सड़ रही !
सब ठौर तुममें धूम कैसी शिशु प्रणय की बढ़ रही !
खलु ब्रह्मव्रत ही नीम है उत्थान की वैसे अरे !
जब नीम ही दृढ़ है नहीं, मंजिल नहीं कैसे गिरे ? ॥ २० ॥

आत्म-संवेदन

हे देव ! अनुचित प्रणय के सहते कुफल अब तक रहे !
यों मूल अपनी जाति का हम खोदते अब तक रहे !
हा ! इस अमंगल कार्य से हम स्वाह, आधे❀ बन चुके !
जो रह गये आधे अभी, यम बन्ध उन पर कस चुके !!! ॥ २१ ॥

शिशु पत्नि का कैसे भला पति साठ के से प्रेम हो !
सोचो जरा तुम ही भला, उस ठौर कैसे क्षेम हो !
व्यभिचार, अनुचित प्रेम का विस्तार फिर हा ! क्यो न हो !
हा ! अपहरण, अपघात हा ! हा ! भ्रूण-हत्या क्यो न हो !!!॥२२॥

नारी निरंकुश हो रही, पति भाग्य अपना रो रहे !
विष पत्नि पति को दे रही, पति-देव मूर्छित हो रहे !
आये दिवस ऐसे कथन सुनते ही है रहते प्रभो !
जब तक न हो तेरी दया, होगा न कुछ हमसे विभो !!! ॥ २३ ॥

तुममें सुशिक्षा की कमी का भाव जो होता नहीं—
यो आज हमको देखने यह दुर्दिवस मिलता नहीं !
कारण हमारे पतन के सब हैं निहित इस दोष में !
हे आत्मियो ! मैं कह रहा हूँ सोचकर, नहि रोष में !!! ॥ २४ ॥

❀ निर्बल,

हाँ, देखने ऐसा दिवस दृढ़ य
बलिदान तक के भी लिये कटिब
हे नाथ ! दो सद्बुद्धि, जिससे सह
फिर से हमारा जैन-जग अभिराम

आओ समस्यायें विचारें आज
हम दो नहीं, हम शत नहीं, है लक्ष
इतना बड़ा समुदाय बोलो क्या न
हट जायँ तो गिरिराज का समतल

अनुचर सभी हो वीर के, तुम
जिसके पिता, गुरु वीर हों, फिर
विभुवीर के अनुयायियो ! लज्जित
मत हो, न आशा को तजो, होकर

सब के चरण हैं, हाथ हैं, अवयव
कुछ दो चरण आगे बढ़ो, पुरुषा
पूर्वज तुम्हारे वीर थे, तुम
[illegible] अब रूप हो, तुम

क्या बन्धुओ ! अब भी तुम्हें सचेतना नहिं आयगी ?
तुम खो चुके सर्वस्व, अब बारी बदन पर आयगी !
हे बन्धुओ ! अब तो जगो, अब तो सहा जाता नहीं !
संबोध करता हूँ तुम्हें, मुझसे रहा जाता नहीं !!! ॥ ३० ॥

आचार्य—साधु—मुनि

गुरुराज ! तुम संसार के परित्यक्त नाते कर चुके,
तुम मोह-माया कामिनी के कक्ष को भी तज चुके.
ऐसी दशा में आपको झंझाल जब कुछ है नहीं—
काठिन्य जिसमें हो तुम्हें ऐसा न फिर कुछ है कहीं ॥ ३१ ॥

जगसे प्रयोजन है नहीं, जग से न कोई अर्थ है;
परिवार, नाते, गौत्र के सम्बन्ध सब निःअर्थ हैं।
निर्धन बने कोटीश चाहे, भूप कोई रङ्क हो;
तुमको किसी से कुछ नहीं—सब ओर से निःशंक हो ॥ ३२ ॥

गुरुदेव ! चाहो आप तो सब कुछ अभी भी कर सको;
तुममें अभी भी तेज है, तुम तम अभी भी हर सको।
सम्राट् हो कोई पुरुष, कोई भला अलकेश हो;
अवधूत हो तुम, क्या करे वह भूप हो, अमरेश हो ? ॥ ३३ ॥

पर साधुपन जब तक न सच्चा आपका गुरु होयगा;
जो तेज तुममें है, नहीं कुछ भी प्रदीपक होयगा !
गुरु ! आपको भी राग-मत्सर, मोह-माया लग गई !
पड़कर प्रपंचों में तुम्हारी साधुता सब दब गई !! ॥ ३४ ॥

क्या बन्धुओ ! अब भी तुम्हे सचेतना नहिं आयगी ?
तुम खो चुके सर्वस्व, अब बाजी बदन पर आयगी !
हे बन्धुओ ! अब तो जगो, अब तो सहा जाता नहीं !
सबोध करता हूँ तुम्हे, मुझसे रहा जाता नहीं !!! ॥ ३० ॥

आचार्य—साधु—मुनि

गुरुराज ! तुम ससार के परित्यक्त नाते कर चुके,
तुम मोह-माया कामिनी के कक्ष को भी तज चुके,
ऐसी दशा में आपको झंझाल जब कुछ है नहीं—
काठिन्य जिसमें हो तुम्हे ऐसा न फिर कुछ है कहीं ॥ ३१ ॥

जगसे प्रयोजन है नहीं, जग से न कोई अर्थ है,
परिवार, नाते, गौत्र के सम्बन्ध सब निःअर्थ हैं ।
निर्धन बने कोटीश चाहे, भूप कोई रक हो;
तुमको किसी से कुछ नहीं—सब ओर से निःशंक हो ॥ ३२ ॥

गुरुदेव ! चाहो आप तो सब कुछ अभी भी कर सको,
तुममें अभी भी तेज है, तुम तम अभी भी हर सको ।
सम्राट् हो कोई पुरुष, कोई भला अलकेश हो,
अवधूत हो तुम, क्या करे वह भूप हो, अमरेश हो ? ॥ ३३ ॥

पर साधुपन जब तक न सच्चा आपका गुरु होयगा;
जो तेज तुममें है, नहीं कुछ भी प्रदीपक होयगा !
गुरु ! आपको भी राग-मत्सर, मोह-माया लग गई !
पड़कर प्रपंचों में तुम्हारी साधुता सब दब गई !! ॥ ३४ ॥

जब साम्प्रदायिक द्वेष, मत्सर से तुम्हे भी द्वेष था;
उन सद्उरों में आपके जब क्लेश का नहिं लेश था,
जिन जाति का उत्थान भी संभव तभी था हो सका।
जब गिर गये गुरु! आप, पतनारंभ इसका हो सका॥ ४०॥

जिन धर्म के कल्याण की यदि है उरों में कामना,
जिन जाति के उत्थान की यदि है उरो में चाहना,
इस वेषपन को छोड़कर सम्यक्त्व व्रत तुम दृढ करो,
यो साम्प्रदायिक व्याधियो का मूल उच्छेदन करो॥ ४१॥

कंचन तुम्हे नहि चाहिए, नहि चाहिए तुमको प्रिया,
फिर किस तरह गुरु! आपमें यो चल रही है अनुशया?
आत्माभिसाधन के लिये संसार तुमने है तजा,
फिर प्रेम कर संसार से क्यों आप पाते है सजा?॥ ४२॥

बदला हुआ है अब जमाना, काल अब वह है नहीं,
उस काल की बातें सभी अनुकूल घटती है नहीं।
युग-धर्म को समझो विभो! तुम से यही अनुरोध है,
कर्तव्य क्या है आपका करना प्रथम यह शोध है?॥ ४३॥

इसमें न कोई झूठ है, अब मोक्ष मिलने का नहीं,
तुम तो भला क्या सिद्ध को भी मोक्ष होने का नहीं!
तिस पर तुम्हे तो राग, माया, कोह से अति प्रेम है,
श्रावक, श्रमण मिलकर उठो, अब तो इसी में क्षेम है॥ ४४॥

गुरु ! आप मुनिपन छोड़कर श्रावकपना धारण करें—
ऐसा कथन मेरा नहीं. शिव ! शिव ! हरे ! शिव ! शिव ! हरे !
जब तक नहीं गुरु ! साधुगण सम्यक्त्व-पद तक जा सकें
उपयुक्त तब तक के लिये यह कथन माना जा सके ॥ ४४ ॥

अतिचार, शिथिलाचार गुरुवर ! आपका अब लेख्य है !
घृत-दुग्ध की बहती हुई सरिता तुम्हारी पेख्य है !
मिष्टान्न बिन अब एक दिन होता तुम्हें गुरु ! भार है !
मेवे, मसाले उड़ रहे—अंगूर बस रसदार है !!! ॥ ५० ॥

गुरु ! पड़ गये तुम स्वाद में,—उपवास, व्रत सब उड़ गये !
अतएव गुरुवर ! श्रावकों के दास, भिक्षुक बन गये !
अब प्रेमियों के दोष गुरु ! यदि आप जो कहने लगे,—
घृत-दुग्ध, रस-मिष्टान्न में गुरु ! दुख तुम्हें होने लगे ॥ ५१ ॥

उपवास दो-दो माह के भी आज तुम में कर रहे,—
हा ! हंत ! ये सब मान-वर्धन के लिये ही कर रहे !
पाखण्ड-प्राण साधुओं का राज्य है फैला हुआ !
सहवास इनका प्राप्तकर सद्साधु भी मैला हुआ !! ॥ ५२ ॥

गुरु ! वेषधारी साधुओं की क्यों भला बढ़ती न हो,
जब है इधर पड़ती दशा, फिर क्यों उधर चढ़ती न हो !
शिशु क्रीत करने की प्रथा तुम में विनाशी चल गई !
वे क्रीत दीक्षित क्या करें, जिनके हृदय की मर गई !! ॥ ५३ ॥

निःरक्त होकर विश्व से नर साधु-व्रत धारण करे,—
कल्याण वह अपना करे, त्रय ताप वह दारुण हरे ।
गुरुदेव ! पर यह बात तो है आपके वश की नहीं,
अब आप इसमें क्या करें, जब भावना जगती नहीं ? ॥ ५४ ॥

अब एक मेरी प्रार्थना है आप यदि गुरु! मानलें—
यह वेष पावन भूलकर यह वेष भिक्षुक जानलें।
गुरुदेव! भिक्षुक से अधिक अब मान तो है आपका?
तुम पूज्य अपने को कहो, नहिं पूज्य-पद है आपका!! ॥ ४४ ॥

इस साम्प्रदायिक द्वेप-मत्सर-राग को तुम छोड़ दो,
खण्डित हुये इस धर्म के तुम खण्ड फिर से जोड़ दो।
अब भी तुम्हारा तेज है—इतने पतित तो हो नहीं,
आज्ञानुलंघन हम करें गुरु !—धृष्ट इतने तो नहीं ॥ ६० ॥

साध्वियें

हे साध्वियो ! स्त्र्युद्धार का अब भार तुम सभाल लो,
जिसके लिये तुम थीं चली पति-गेह तजकर-सार लो।
नारीत्व में श्रृङ्गार के जो भाव घर कर घुस गये—
इनके अखाड़े तोड़ दो-सद् भाग्य जग के जग गये ॥ ६१ ॥

स्त्रीवर्ग का सिंहावलोकन आज तुम आचरण करो,
स्त्रीवर्ग को पूज्ये ! उठाने का अचल व्रत तुम करो।
आदर्श होंगी आप तो—आदर्श होंगी नारियें;
यदि बढ रही हैं आप कुछ, तो बढ सकेंगी गृहणियें ॥ ६२ ॥

हे साध्वियो ! फिर आप भी तो साधुओ के तुल्य है,
इनसे न कुछ हैं आप कम-इनसे न कुछ कम मूल्य है।
आत्मार्थ साधन के लिये तुमने तजा पतिगेह को,
समझो न कोई चीज फिर इस निज विनश्वर देह को ॥ ६३ ॥

नेता

नेता जनो ! यदि धर्म है कुछ आपके इस प्राण में,
सर्वस्व यदि तुम दे रहे हो जाति के कल्याण में,
फिर क्यो नहीं जूना नया तुम आज तक कुछ कर सके ?
हमको परस्पर या लड़ाकर उदर अपना भर सके ? ॥ ६४ ॥

[illegible]

[illegible] हो, [illegible] इसमें नहीं हो

[illegible] हो।

[illegible]

[illegible] ॥ ४ ॥

ताजनो ! अब जाति-जीवन है तुम्हारे हाथ में;
ीवन-मरण-भवितव्यता सब कुछ तुम्हारे हाथ में।
ह जाति आशागीर है, तुम आप आशागार हो,
म यत्न कुछ ऐसे करो बस अचिर जात्युद्धार हो !! ॥ ७० ॥

उपदेशक

रके दया उपदेशको ! अब ऐक्यता पर जोर दो,
खरे हुए हैं रत्न मालाके—उन्हे फिर जोड़ दो।
पवाद-खंडन-चोट से चक-चूर अब करना नहीं,
िरते हुए पर वज्र का आघात फिर करना नहीं ॥ ७१ ॥

मको जगाने के लिये तुम यत्न उर भरकर करो;
ुम अब नहीं पर साम्प्रदायिक रोग को वर्धित करो!
हयोग दो गिरते हुए को फिर उठाने में हमें;
सको लगादो मार्ग मे, पथ-भ्रष्ट जो दीखे तुम्हे ॥ ७२ ॥

श्रीमन्त

ीमन्त ! बोलो, कब तलक तुम यो न चेतोगे अभी?
या अवदशा मे और भी अवशिष्ट देखोगे अभी?
ुम कर्म से, तुम धर्म से हो पतित पूरे हो चुके;
आलस्य, विषयाभोग के आवास, अड्डे हो चुके !!! ॥ ७३ ॥
है अज्ञता तुमको प्रिया सम, विषय-रस निज बन्धु है।
है रोग तुमको पुत्र सम, कलदार करुणासिन्धु है!
तुम भोग में तो श्वान हो, तुम स्वार्थ मे रण-शूर हो!
परमार्थ मे तुम हो बधिर, अपने लिये तुम सूर हो !!! ॥ ७४ ॥

नहिं ध्यान तुमको जाति का, चिन्ता नहीं कुछ धर्म की,
उन्मूल चाहे देश हो,—सोचो नहीं तुम मर्म की।
रोते हुए निज बन्धु पर तुमको दया नहिं आ रही;
उनके घरों में शोक है, लीला तुम्हें है भा रही! ॥७५॥

व्यवहार और! आपका अब देखने ही योग्य है!
क्रन्दन तुम्हारे बन्धु का भी श्रवण करने योग्य है!
श्रीमन्! देखो तो तुम्हारा कुल कैसा हो रहा!
दयनीय हालत देखकर यह जन तुम्हारा रो रहा! ॥७६॥

श्रीमन्त हो, पर वस्तुतः श्रीमंतता तुममें नहीं,
लक्षण कहीं भी आपमें श्रीमन्त के मिलते नहीं !
श्रीमन्त भामाशाह थे, श्रीमन्त जगडूशाह थे,—
वे देश के, निज जाति के थे अकबर, वरशाह थे !! ॥ ८० ॥

उन मस्तकों मे शक्ति थी, उनको रसों से मुक्ति थी,
निज जाति प्रति, निज धर्म प्रति उनके उरो में भक्ति थी ।
श्रीमन्त वे भी एक थे, श्रीमन्त तुम भी एक हो—
कंजूस, मक्खीचूस तुम श्रीमन्त ! नम्बर एक हो !! ॥ ८१ ॥

नहिं धर्म से कुछ प्रेम है, साहित्य से अनुराग है !
अतिरिक्त रति-रस-रास के किसमें तुम्हारा राग है ?
जब आठ की तुमको प्रिया वय साठ में भी मिल सके;
ऐसे भला रसरास में तुम ही कहो-चख खुल सके ? ॥८२॥

तुमको कहो क्या जाति का दुर्दैन्य खलता है नहीं ?
पड़ती उधर यदि है दशा, चढ़ती इधर तो है सही ?
हैं आप भी तो जाति के ही स्तंभ अथवा अंश रे !
भूचाल से शायद अचल होते न होंगे ध्वंश रे ! ॥ ८३ ॥

अवहेलना कर जाति की तुम स्वर्ग चढ़ सकते नहीं;
रहना उसी में है तुम्हे, हो भिन्न जी सकते नहीं !
श्रीमन्त ! चाहो आप तो सम्पन्न भारत कर सको;
आर्थिक समस्या देश की सुन्दर अभी भी कर सको ॥ ८४ ॥

तुमने किया क्या आज तक? क्या कर रहे तुम हो अभी?
अधिकांश लेखा दे चुका, अवशिष्ट भी सुनलो अभी।
पर वेदना से हाय! तुम कब तक रहोगे दूर यों?
मूर्च्छा कहो कब तक तुम्हारे से न होगी दूर यों? ॥ ८४ ॥

रोग तुम्हारे पास है जब, क्या तुम्हें सुख हो सके?
जब तक तुम्हारे [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible]!
[illegible] जाति में किस भाँति तुम [illegible] रह,—
[illegible] [illegible] करके नहीं तुम आप जीवन पा रहे? ॥ ८५ ॥

श्रीमन्त ! केवल आप ही बस एक ऐसे वैद्य है;
ये रोग जिनसे देशके सुन्दर, सरलतम छेद्य है।
अधिकांश रोगों के तथा फिर पितृ भी तो आप है,
श्रीमन्त ! जिम्मेदार इस बिगड़ी दशा के आप है ॥ ९० ॥

सबसे प्रथम श्रीमन्त ! तुम इन, इन्द्रियों को वश करो,
तन, मन, वचन पर योग हो, धन धर्म के अधिकृत करो।
तन, मन, वचन, धन आपका हो देश भारत के लिये ;
रस, रास, छोड़ो आज तुम निज जाति-जीवन के लिये ॥ ९१ ॥

अपखर्च को अब रोक दो, अब दीन भूमी हो चुकी !
धन, धर्म, पत, विश्वास की सब भाँति से इति हो चुकी !
अनमेल, अनुचित पाणि-पीड़नसे तुम्हे वैराग्य हो,
वह कर्म—संयम,—शीलमय-फिरसे जगा सद्भाग्य हो ॥९२॥

अब, मूर्खता से आपको धनधर ! नहीं अनुराग हो ;
मूर्ख ! तुम्हारी राह तो इनमें न तेरा राग हो।
दल साम्प्रदायिक तोड़कर घरको सुधारो आज तुम,
इस दीन भारत के लिये दो हाथ देदो आज तुम ॥ ९३ ॥

निर्धन

तुम हो पुरुष, पुरुषार्थ के नरदेह से अवतार हो,
पुरुषार्थ ही प्रारब्ध है, फिर क्यों न दलितोद्धार हो।
पुरुषार्थ तो करते नहीं, तुम दैव को रोते रहो ;
क्या दिन भले आजायेंगे दिन में कि जब सोते रहो ? ॥ ९४ ॥

व्यापार कन्या का करो, जिसमें न पड़ता श्रम तुम्हें !
मुद्रा हजारों मिल रही हैं एक कन्या पर तुम्हें !
जिसके सुता है कक्ष में, कर में उसीके शक्ति है ?
उसके सुता है कक्ष में, जिसके करों में शक्ति है ॥ १५ ॥

विद्या पढ़ो तुम, ज्ञान सीखो, बुद्धि, करके काम लो ;
करते रहो उस काम को जो काम जग में नाम लो ।
कैसे कहूँ ! भगवान तुम देते भला जाते नहीं ;
क्या एक कन्या के आगे काम निज करते नहीं ? ॥ १६ ॥

फिर पूर्ववत ही आपका सम्मान नित बढ़ने लगे ;
शासन तुम्हारा जाति पर निर्बाध फिर चलने लगे ।
सम्राट माने आपको अरु हम प्रजा बन कर रहें ;
बढ़ती रहे नित धर्म-ध्वज, परमार्थ में हम रत रहें ।।१००।।

यति

आस्वाद, रस, रति छोड़ दो, अब नेह जग से तोड़ दो,
तन,मन,वचन पर योग कर अब अर्थ-संचय छोड़ दो ।
हो पठन-पाठन शास्त्र का कर्तव्य निशिदिन आपका,
धोरी धुरंधर धर्म का प्रत्येक हो जन आपका ।।१०१।।

युवक

युवको ! तुम्हारे स्कंध पर सब जाति का गिरि-भार है;
पोषण-भरण, जीवन-मरण युवको ! तुम्हारी लार है ।
पौरुष दिखाओ आज तुम, तुम से अड़ा दुर्दैव है,
तुम देख लो माता तुम्हारी रो रही अतएव है ।।१०२।।

युवको ! तुम्हारे प्राण में रतिभाव आकर सो गया,
सुकुमार रति सम हो गये तुम, वेष रति का हो गया ।
रतिभाव जब तुम में भरा, नरभाव तब रति में भरा,
पहिचान भी अब है कठिन,—तुम युवक हो या अप्सरा।।१०३।।

रस,-रास,-आनंद,-भोग से सम्बन्ध सत्वर तोड़ दो;
व्यवसाय सारे व्यसन के करके दया अब छोड़ दो ।
दुर्दैव से तुम भिड़ पड़ो,—भूकम्प भूमी कर उठे,
बस शत्रु या तो झुक पड़े या फिर पलायन कर उठे ।।१०४।।